शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

जून : १९६३ ☆ वर्ष उन्नीसवाँ, ज्येष्ठ, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : २

वस्तु-स्तवन

अनादि निधन (अनादि अनंत) वस्तु भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादापूर्वक परिणमन करती है, कोई किसी के आधीन नहीं है, उसीप्रकार कोई पदार्थ किसी के परिणमाने से परिणमित नहीं होता। राग व पर की अपेक्षा रहित मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ—ऐसा दृढ़ निश्चय करके, ज्ञातापने का चिंतन करना, वह वस्तु-स्तवन है।

वार्षिक मूल्य
तीन रुपया

[२१७]

एक अंक
चार आना

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव

(दूसरी आवृत्ति)

धर्म जिज्ञासुओं के लिये महान उपकारी साहित्य जो जैनधर्म का महत्वपूर्ण तात्त्विक और प्रयोजनभूत ग्रंथ है। जो जिज्ञासुओं के लिये सर्व समाधानरूप अपूर्व वस्तुस्वभाव के ज्ञानमय तत्त्वदृष्टि प्रगट करनेवाली महान चीज़ है। इसके मुख्य विषय—

१- क्रमबद्धपर्याय के स्वरूप का विस्तारपूर्वक स्पष्टीकरण तथा उनमें दोष कल्पना का निराकरण है।

२- सम्यक् अनेकांत गर्भित सम्यक् नियतवाद-जिसमें पुरुषार्थ, स्वभाव, काल, नियति और कर्म—ये पंच समवाय और क्रमबद्ध के निर्णय में स्वसन्मुख होने का सच्चा पुरुषार्थ तथा अनेकांत।

३- अनेकांत, निमित्त-उपादान, निश्चय-व्यवहार।

४- द्रव्य पर्याय संबंधी अनेकांत।

५- अनंत पुरुषार्थ।

६- वस्तुविज्ञान अंक जिसमें श्री प्रवचनसारजी गाथा ९९ के ऊपर पूज्य श्री कानजी स्वामी द्वारा प्रवचनों का सार है।

७- आत्मा कौन है और कैसे प्राप्त हो, इस विषय में प्रवचनसार शास्त्र में ४७ नयों द्वारा आत्मद्रव्य का वर्णन है, उस पर खास प्रवचनों का सार-[जिसमें नियतनय, अनियतनय, कालनय, अकालनय से वर्णन है] बढ़िया जिल्द, सुंदर कागज व आकर्षक बढ़िया टाइप में उत्तम छपाई है, पत्र संख्या ४००, मूल्य २-५० नये पैसे। ५० पुस्तक लेने पर १० टका के हिसाब से कमीशन देंगे। इस पुस्तक की छपाई, कागज, बाइंडिंग आदि सर्वोत्तम होने पर भी लागत से डेढ़ रुपया कम मूल्य रखा गया है।

पता—**श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट**
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

卐 : संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला) 卐

जून : १९६३ ☆ वर्ष उन्नीसवाँ, ज्येष्ठ, वीर नि०सं० २४८९ ☆ अंक : २

व्यवहारनय अभूतार्थ किसलिए ?

श्री समयसारजी गाथा १७-१८ ऊपर पूज्य कानजी स्वामी का प्रवचन तारीख २-१-६३

प्रश्न—जैसे निश्चयनय भूतार्थ है, उसीप्रकार व्यवहारनय भूतार्थ क्यों नहीं ? अभूतार्थ किसलिये ?

उत्तर—(१) नित्य चैतन्य वस्तु में उसका अभाव है इससे, (२) उसके आश्रय से वीतरागी धर्म होता ही नहीं, परन्तु (३) राग की उत्पत्ति होती है, (४) रागभाव से लाभ मानने से मिथ्यात्व का पाप होता है – इसलिये वह आत्मा धर्म के लिये आश्रय करनेयोग्य नहीं परंतु जानने के लिये बराबर है।

व्यवहारनय सर्वथा अभूतार्थ नहीं अर्थात् वह जाननेयोग्य है; परंतु आत्मा वैसा व उतना नहीं – इसलिये सम्पूर्ण व्यवहार निश्चय से अभूतार्थ है। स्व-आश्रयरूप निश्चयनय किसी प्रकार से अभूतार्थ नहीं। श्री समयसारजी गाथा नं० २७२ में कहा है कि—

इसलिये शुभराग का तथा खंड ज्ञान का आश्रय छोड़कर, अरे! केवलज्ञान की पर्याय भी एक समय का अंश है, वह इस समय नहीं, और उसके आश्रय से राग की उत्पत्ति होती है, इसलिये पर्याय का आश्रय छोड़कर, अखंड एकरूप वीतरागी ज्ञायकस्वभाव का आश्रय करे तो वहाँ एक अंश में शुद्धि की वृद्धि होती है, परंतु पूर्ण वीतरागता नहीं, इसलिये बीच में अणुव्रत, प्रतिमा, महाव्रत का शुभराग आता है परंतु वह निश्चय धर्म नहीं (वीतरागता का कारणरूप धर्म नहीं), परंतु बंध का कारणरूप आस्रवतत्त्व होने से—अभूतार्थ धर्म, अनात्म धर्म, संसार धर्म है, इसलिये

उसके आश्रय से धर्म नहीं। इतने कारणों से उसको असत्यार्थ कहा है। निश्चय धर्म=सच्चा धर्म, स्वआश्रित वीतरागभाव है, इस अपेक्षा से व्यवहार को असत्यार्थ कहा है; परंतु कथंचित् असत्यार्थ है, सर्वथा असत्यार्थ नहीं परंतु उसके आश्रय करने से मोक्षमार्ग नहीं होता, इसलिये अभूतार्थ है। भूतार्थ, सत्यार्थ मुख्य जो शाश्वत निजकारणपरमात्मा—उसका आश्रय करने के लिये व्यवहार का आश्रय करने जैसा नहीं, ऐसा समझना। बाकी भूमिकानुसार ऐसा व्यवहार आता ही है—उसको करना, न करना यह प्रश्न रहता ही नहीं।

शुभ-अशुभ, पुण्य-पाप जितना ही आत्मा नहीं, और उसको जाने उतना ज्ञान, वह भी आत्मा नहीं। शुभराग परम सत्य, परम तत्त्व भगवान आत्मा समान वह त्रिकाली नहीं—इसलिये वे आश्रय करनेयोग्य नहीं। शुभरागरूप व्यवहार धर्म, वह निश्चय धर्म स्वरूप नहीं। इसलिये चारों प्रकार के व्यवहार अभूतार्थ हैं।

आत्मा के आश्रय से निर्मल दशा प्रगट होती है परंतु वह अधूरी अथवा पूर्ण पर्याय भी एक समय का अंश है। अंश के आश्रय से धर्म नहीं होता, अंश जितना आत्मा नहीं। केवलज्ञान पर्याय, निर्मल दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय अथवा गुण-गुणी भेदरूप सद्भूत व्यवहार भी अभूतार्थ है; वह है तो सही परंतु उतने में आत्मा माने, अंश के आश्रय से कल्याण माने, वह पर्यायमूढ़ परसमय-मिथ्यादृष्टि है।

आत्मा अंतर्मुख स्वाश्रयपने से चूका, उतना ही बहिर्मुख हुआ है। उससे मुक्त होने के लिये त्रिकाल स्वरूप में ढलना, यह ही सत्यार्थ उपाय है; और बहिर्मुख राग तथा अल्पज्ञान का उघाड़, उसको गौण करके असत्यार्थ कहा, व्यवहार कहा।

वस्तु का असली स्वभाव जिस रीत से है, उसका ख्याल करके अंतर में ढलते ही भेद गौण हो जाता है।

आत्मा महान पदार्थ है। अहो! एक आत्मा अनंत परमात्मा की खान है। किसप्रकार? हरेक संसारी आत्मा इस समय भी शक्तिरूप से कारणपरमात्मा है। इससे उसका निधानरूपी खान में अनंत कार्यपरमात्मा—कार्यशुद्धपर्याय है। वह शक्तिरूप से, इस आत्मा में अनंत-अनंत कार्यपरमात्मा की खान है; जैसे कि त्रिकाली पूर्ण स्वभावी आत्मा के आश्रय से पूर्ण दशा-सिद्ध परमात्मदशा उत्पन्न हुई, वह दूसरे समय में व्यय हुई और उसी समय में नई कार्यपरमात्मारूप कार्य-शुद्धपर्याय प्रगट होती रहती है—इसप्रकार सादि-अनंत काल चालू ही रहती है—ऐसा वस्तु का

स्वरूप है। मोक्ष होने पर संसार काल से अनंतानंत गुण काल मोक्षदशा का है, अर्थात् सादि-अनंत काल कार्यशुद्ध परमात्मपर्याय इस आत्मद्रव्य में से प्रगट होती रहेगी—उसका कभी भी अंत नहीं आवेगा।

अहो! त्रिकाली अनंत गुणों का पिंड आत्मा परम तत्त्व, परमस्वभाव है; वह सामान्य तत्त्व है और उसका विशेषतत्त्व—पर्याय स्वभाव भी, बेहद शक्तिरूप से प्रगट होने के बाद नई-नई पर्याय स्वभाव पर्यायरूप से प्रवाहित होती रहती है। जैसे-द्रव्य और उसके ज्ञानादि गुणों का कभी भी नाश नहीं होता, वैसे उसकी उत्पाद-व्ययरूप पर्याय धारा के प्रवाह का कभी नाश नहीं होता। संसारदशा में हो या मुक्तदशा में हो, उसके हरेक गुण की पर्याय में कर्ता, कर्म, करण, आधार बगैरह छहों कारक सदा से स्वतंत्र हैं। अहो! मैं ऐसा परम अद्‌भुत आत्मा ज्ञायक हूँ, इसप्रकार स्वसंमुख होकर आत्मभान करने के बाद अंतरंग में एकाग्रता का अभ्यास, अनुभवरूप पुरुषार्थ बढ़ते ही चारित्र पूर्ण हुये केवलज्ञान प्रगट होता है—वह कहाँ प्रगट होता है? द्रव्य, गुण प्रगट होते नहीं परंतु अंदर आत्मा की अपनी शक्ति है, वह प्रगट होती है। प्राप्ति की प्राप्ति होती है—उसको लेंडी पीपर के दृष्टांत से समझाने में आती है। जैसे पूर्ण चरपराहट और हरापना अप्रगट था, बाद में उसको घोंटने से चरपराहट और हरापन प्रगट होता है, उसीप्रकार आत्मा में पूर्ण ज्ञान, आनन्द आदि शक्ति थी, उसमें दृष्टि, ज्ञान और एकाग्रता के बल से पूर्ण परमात्मदशा-सिद्धदशा प्रगट होने लगती है—उसमें ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, स्वच्छत्व आदि अनंत गुणों की अनंत पर्याय पूर्ण निर्मलपना से प्रगट हुई, दूसरे समय द्रव्य में समा जाती है। यह पूर्ण निर्मल स्वभाव को परमात्मा कहने में आता है। ऐसी अनंत पर्यायरूप परम ऐश्वर्यरूप परमात्मभाव का पिंड हरेक आत्मा है; इसलिये कहा है कि—एक आत्मा के पेट में अनंत परमात्मा है।

यहाँ प्रश्न होता है कि आत्मा और ज्ञान, आनन्द आदि गुण आत्मा के साथ एकमेक अनादिकाल से है तो उसके सेवन करने का उपदेश क्यों दिया जाता है? क्या ऐसी अपनी आत्मा को यह जीव जानता ही नहीं। उसके जवाब में कहते हैं कि—अपने को जैसा है, वैसा न जानता हुआ पररूप से, पुण्य-पाप के कर्ता के रूप में आदि अन्यरूप ही मानते हैं, इसलिये अपने को ज्ञान स्वरूप पर से जानता ही नहीं। वास्तव में देखा जावे तो आत्मा अपने स्वपरप्रकाशक ज्ञान को ही जानता है। ज्ञान में ही ज्ञान द्वारा स्वयं जानता है, और उसमें अपने ज्ञान के स्वच्छ स्वभाव को ही जानता है, परंतु विपरीत मान्यता के वश जैसा है, वैसा नहीं मानता और जैसा नहीं, वैसा मानता है।

इसलिये अपने को भूल रहा है। अनादि काल से एक भी क्षण आत्मा का अनुभव नहीं किया इसलिये अज्ञानी है।

पर्याय तो द्रव्य की है, उसको अभूतार्थ और उसके जाननेवाले ज्ञान को अभूतार्थ क्यों कहते हैं? कि हरेक पर्याय क्षणिक एक समय जितना अंश है और उसके लक्ष्य से रागी जीव के राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है। जैसे परद्रव्य में से इस जीव की पर्याय नहीं होती, उसीप्रकार अपनी पर्याय में से पर्याय नहीं होती। मोक्षमार्गरूपी पर्याय में से मोक्ष=पूर्ण निर्मल पर्याय नहीं होती; पूर्व पर्याय का तो अभाव होता है, अभाव में से भाव नहीं होता; इसलिये कार्य पर्याय का सच्चा कारण तो त्रैकालिक एकरूप द्रव्य है, उसमें से पर्याय आती है। द्रव्यस्वभाव नहीं मिटता, उसीप्रकार पर्याय धर्म (नई-नई उत्पत्ति रूप प्रवाह क्रम) कभी भी नहीं मिटता, उसमें किसी की राह देखनी पड़े, ऐसा नहीं।

जैसे बीज से वृक्ष या वेल और फल उत्पन्न होते हैं, उसीप्रकार भगवान आत्मा में अनंत गुणरूपी बीज शक्तिरूप से अनंता पड़ा है, वह कारण शक्ति में से कार्य पर्याय अपूर्ण अथवा पूर्ण होती ही रहती है। देखिये! संसार पर्याय तो मोक्षपर्याय से अल्प ही है। क्योंकि कितने ही भव्य जीवों के संसार का अंत आता है; परंतु मोक्ष होने के बाद प्रत्येक समय में अनंत काल तक पूर्ण पर्याय द्रव्य में से आती ही रहती है, कभी उसका अंत आता ही नहीं। इसलिये द्रव्यस्वभावी आत्मा ही अनंत-अनंत कार्यशुद्ध परमात्मपर्याय का बीज है, अक्षय खान है। ऐसा यह आत्मा ही परमार्थ है, भूतार्थ है और उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन से लेकर सादि-अनंत मोक्ष पर्याय प्रगट होती रहती है। पर्याय तो क्षणिक एक अंश होने से भले ही वह पूर्ण निर्मल पर्याय सद्भूत व्यवहारनय का विषय है, वह भी अभूतार्थ है, क्योंकि वह नित्य नहीं और उस पर्याय जितना द्रव्य नहीं, तथा उसके आश्रय से राग की उत्पत्ति होती है और पर्याय मात्र का आलंबन से लाभ माननेवाले को प्रवचनसार में पर्यायमूढ़-परसमय-मिथ्यादृष्टि कहा है; इसलिये केवलज्ञान की पर्याय भी वीतरागता के लिये आश्रय करनेयोग्य नहीं है। केवलज्ञान की निर्मल पर्याय को व्यवहार कहा, गौण करके अभूतार्थ कहा है।

केवलज्ञान और कार्यपरमात्मारूप से मोक्ष पर्याय तुम्हारे अभी प्रगटपना से नहीं, और उसके लक्ष्य से राग की उत्पत्ति होती है और शुभराग से कल्याण माननेवाले को मिथ्यात्वरूपी महान पाप का लाभ होता है, इसलिये उसका आश्रय छोड़ने के लिये, त्रिकाली द्रव्यस्वभाव को भूतार्थ और आश्रय करनेयोग्य कहा, पर्याय के चारों प्रकार के व्यवहार को अभूतार्थ कहा है, वह उचित ही है।

शुद्धनय द्वारा द्रव्यस्वभाव का आश्रय होते ही प्रथम श्रद्धा में से सभी व्यवहार का आश्रय छूट जाता है। दिगम्बर संतों ने मुख्य वह निश्चय और गौण वह व्यवहार कहा है।

अहो!! ऐसी आत्मा की महिमा सुनी नहीं, खबर ही नहीं थी कि अंदर साक्षात् कारणपरमात्मा हूँ, निकट हूँ, दूर नहीं और उसके आश्रय से ही लाभ है—यह मूल वस्तु भूला। दृष्टि बिना दौलत को देखे कौन? जैसे - श्रीमंत माता-पिता की गैर मौजूदगी में छोटे बालक को उसके ट्रस्टी द्वारा मासिक १००) मिलते थे, कुछ योग्य हुआ तब कहा कि तेरे पिताजी करोड़पति थे, तू ही उसका मालिक है, बस यह निर्णय होते ही तुर्त उसका मालिक होता है, इसप्रकार आत्मा में अनंत गुणों का अक्षय निधान है, अनंत ज्ञान, दर्शन, सुख, बल, अगुरुलघु, असंकुचितविकासत्य, सर्वज्ञत्व आदि अनंत गुणरूपी शाश्वत् लक्ष्मी नित्य है ही। उस सभी त्रैकालिक शक्ति का पिंड शक्तिवान अखंड आत्मा को कारणपरमात्मा कहने में आता है, प्रत्येक आत्मा निश्चय से ऐसा ही है।

नियमसार शास्त्र में कहा है कि जैसा कार्यपरमात्मा, वैसा ही कारणपरमात्मारूप प्रत्येक जीव शुद्धनय से शुद्ध ही है, अशुद्ध नहीं है। संसारदशा में अशुद्धता तो प्रगट एक समय के अंश में है, उसका आश्रय द्वारा अनादि से राग में रुचि रखकर व्यवहारमूढ़ हो रहा है; दु:खी हो रहा है इसलिये उस अंश का आश्रय-व्यवहार का आश्रय छुड़ाने के लिये और ध्रुव कारणपरमात्मारूप अंत:तत्त्व में दृष्टि कराने के लिये (परम सत्य की दृष्टि कराने के लिये) पर्यायार्थिकरूप व्यवहारनय को गौण करके अभूतार्थ, असत्यार्थ कहा है।

सैद्धान्तिक चर्चा

[लौकिक व्यवहारीजन के अभिप्राय की अपेक्षा सोपक्रम आयु के अंत को अकाल मृत्यु या अक्रमिक कहने में आते हैं किंतु सर्वज्ञ के ज्ञान की अपेक्षा तथा ज्ञेय अपेक्षा से वास्तविकता देखें तो सोपक्रम आयु का अंत भी क्रम निश्चित क्रमबद्ध ही है; अक्रम नहीं है। इस विषय में श्री रामजीभाई दोशी ने निम्न प्रकार शास्त्राधार से विस्तृत वर्णन किये हैं।]

★

प्रश्न 1 (अ)—सर्वज्ञ, अक्रमिकपर्यायरूप अकाल मृत्यु को उसी रूप में ही जानता है या 'योग्य काल मृत्यु' के रूप में जानता है ?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर देने से पहले 'अक्रमिक पर्याय' व 'अकाल मृत्यु' संबंधी विवेचन की जरूरत है, इसके बाद इस प्रश्न का उत्तर देने में आयेगा।

अक्रमिकपर्याय, सिद्धांत-वचन नहीं है—दिगम्बर जैन शास्त्रों में प्राकृत, संस्कृत और हिन्दी में 'अक्रमिक पर्याय'—ऐसा कोई सिद्धांत का वचन नहीं है। किसी भी जगह ऐसा शब्द प्रयोग करने में नहीं आया तथा चारों अनुयोगों में 'अक्रमिक पर्याय' का कहीं भी नामनिशान नहीं है। उत्पादरूप पर्याय को शास्त्रों में 'क्रमरूप, क्रमवर्ती, क्रमभावी, क्रम-अनेकांत, क्रम-अनुपाती, क्रमनियमित' आदि नामों से सम्बोधित किये हैं।

शास्त्राधार निम्न प्रकार हैं—पर्याय को क्रमवर्ती-क्रमरूप कहा है, अक्रमिक नहीं।

१—श्री समयसारजी, गाथा २, पृष्ठ ९ में टीका में कहा है कि 'वह क्रमरूप व अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेकभाव, जिसका स्वभाव होने से जिसने गुण और पर्यायों को अंगीकार किया है—ऐसा है (पर्याय, क्रमवर्ती होती है और गुण, सहवर्ती होता है; सहवर्ती को अक्रमवर्ती भी कहते हैं।)'

देखिये यहाँ पर 'अक्रमिक पर्याय' नाम नहीं आया है किन्तु 'क्रमरूप' या 'क्रमवर्ती'—ऐसा नाम आया है। गुण को अक्रम नाम से कहा है।

२—श्री समयसारजी, मोक्ष अधिकार, गाथा २९४, पृष्ठ ४१८ की टीका में कहा है कि 'वह

(चैतन्य) प्रवर्तमान होता हुआ, जिस-जिस को व्याप्त होकर प्रवर्तता है और निवर्तमान होता हुआ, जिस-जिस पर्याय को ग्रहण करके निवर्तता है, वे समस्त सहवर्ती या क्रमवर्ती पर्यायें आत्मा हैं, इसप्रकार लक्षित करना।'

देखिये—इसमें भी कहीं पर्याय का 'अक्रमिक' ऐसा नाम नहीं है किंतु पर्याय को क्रमवर्ती कहा और गुण को पर्याय कहकर, सहवर्ती कहा है।

३—श्री समयसारजी, कलश २४८ की टीका में पृष्ठ ५८२ में लिखा है कि 'सहजभूत (साथ ही) प्रवर्तमान और **क्रमशः प्रवर्तमान** अनंत चैतन्य अंशों के समुदायरूप अविभाग द्रव्य के द्वारा एकत्व है और अविभाग एक द्रव्य में व्याप्त सहभूत प्रवर्तमान तथा **क्रमशः प्रवर्तमान** अनंत चैतन्य अंशरूप पर्यायों के द्वारा अनेकत्व है।'

देखिये—यहाँ पर भी पर्याय को क्रमशः प्रवर्तमान कहा है, परंतु 'अक्रमिक पर्याय' नहीं कहा है।

४—श्री समयसारजी के परिशिष्ट पृष्ठ ४८९, ४७ शक्तियों का वर्णन करते हुए कहा है कि 'क्रमवर्तीरूप और अक्रमवर्तीरूप वर्तन जिसका लक्षण है—ऐसी उत्पाद-व्यय-ध्रुवत्वशक्ति'।

देखिये—यहाँ पर भी पर्याय को 'क्रमवर्ती' कहा है। उत्पाद-व्यय को क्रमवर्ती कहा है और ध्रुव (गुण) को 'अक्रमवर्ती' कहा है, परंतु उत्पाद -व्ययरूप पर्याय को '**अक्रमिकपर्याय**' नहीं कहा है।

पर्यायें क्रमवर्ती, क्रमरूप क्रम कहा है; अक्रमिक नहीं।

५—श्री समयसारजी, सर्वविशुद्धज्ञान स्याद्वाद अधिकार पृष्ठ ५८७ में कहा है कि 'क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान, तद्-अविनाभूत अनंत धर्म समूह जो कुछ जितना लक्षित होता है, वह सब वास्तव में एक आत्मा है।' देखिये—यहाँ पर भी पर्याय को क्रमरूप प्रवर्तमान, और गुण को अक्रमरूप प्रवर्तमान, परंतु उत्पादरूप पर्याय को 'अक्रमिक पर्याय' नहीं कहा है। कहीं पर अक्रमरूप का अर्थ युगपद् कहा है, कारण कि सब गुण एक साथ वर्तते हैं।

६—श्री समयसारजी सर्वविशुद्धज्ञान स्याद्वाद अधिकार, पृष्ठ ५८७ में लिखा है कि 'जिसमें क्रम और अक्रम से प्रवर्तमान अनंत धर्म हैं।'

देखिये—इसमें भी पर्याय को क्रम और गुण को अक्रम कहा है, परंतु पर्याय को 'अक्रमिक' पर्याय नहीं कहा है।

७—श्री समयसारजी, सर्वविशुद्धज्ञान स्याद्वाद अधिकार, कलश २६४ में लिखा है कि—'क्रमरूप और अक्रमरूप से वर्तमान विवर्त्त से (रूपांतर से, परिणमन से) अनेक प्रकार का द्रव्य-पर्यायमय चैतन्य, इस लोक में वस्तु है। देखिये—यहाँ पर भी पर्याय को क्रमरूप और गुण को अक्रमरूप लिखा है, परंतु पर्याय को 'अक्रमिकपर्याय' नहीं लिखा है।'

पर्यायों क्रम नियमित

८—श्री समयसारजी, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, गाथा ३०८ से लेकर ३११ में बताया है कि—आत्मा का अकर्तृत्व दृष्टान्तपूर्वक कहते हैं और उसकी टीका में परिणामों के लिये 'क्रम नियमित' शब्द, संस्कृत में दो बार आया है। देखिये—इसमें कहीं भी पर्याय को 'अक्रमिक पर्याय' नहीं कहा।

श्रीसमयसारजी में श्रीकुन्दकुन्दाचार्य और श्री अमृतचन्द्राचार्यजी ने किसी भी जगह पर उत्पादरूप पर्याय को 'अक्रमिक पर्याय' नहीं कहा, परंतु सर्व जगह पर उसको 'क्रमरूप पर्याय' ही कहा है।

९—श्री पंचास्तिकाय में गाथा ८, पृष्ठ २० की टीका में उत्पाद-व्ययरूप पर्याय को 'क्रमवर्ती' 'क्रमभावी' कहा है; देखिये—यहाँ पर भी पर्याय को 'अक्रमिक पर्याय' नहीं कहा है। पर्यायों को क्रमवर्ती, क्रमभावी, क्रम-अनेकांत कहा; अक्रमिक नहीं।

१०—श्री प्रवचनसार, जयसेनाचार्यकृत टीका, गाथा १४१ पृष्ठ २०० पर 'प्रति समय वर्तनेवाली पूर्व-उत्तर पर्याय, मोती के हार की भाँति संतान, ऊर्ध्व प्रचय को 'क्रम-अनेकांत' कहने में आया है। जैसे, मोती के हार का एक-एक दाना, अपने-अपने स्थान में ही रहता है, आगे-पीछे नहीं होता; इसीप्रकार पर्याय भी अपने-अपने स्वकाल में ही उत्पन्न होती है, परकाल अर्थात्, आगे या पीछे उत्पन्न नहीं होती—ऐसा अनेकान्त है। देखिये—यहाँ पर भी पर्यायों को 'क्रम-अनेकांत' कहा परंतु 'अक्रमिक-पर्याय' नहीं कहा।'

श्री अमृतचंद्राचार्यकृत टीका (श्री प्रवचनसार, गाथा १४१) में तिर्यक्प्रचय और ऊर्ध्वप्रचय का विषय आया है, उसकी व्याख्या नीचे के शब्दों में है।

'प्रदेशों का समूह तिर्यक्प्रचय और समय विशिष्ट वृत्तियों का समूह, ऊर्ध्वप्रचय है।'

ऊर्ध्वप्रचय तो सर्वद्रव्यों के अनिवार्य ही है, क्योंकि द्रव्य की वृत्ति, तीन कोटियों को (भूत, वर्तमान और भविष्य—ऐसे तीन कालों को) स्पर्श करती है, इसलिये अंशों से युक्त है। परंतु इतना

अंतर है कि समय विशिष्ट वृत्तियों का प्रचय (काल को छोड़कर) शेष द्रव्यों का ऊर्ध्वप्रचय है, और समयों का प्रचय कालद्रव्य का ऊर्ध्वप्रचय है, क्योंकि शेष द्रव्यों की वृत्ति, समय से अर्थांतरभूत (अन्य) है; इसलिये वह वृत्ति, समय विशिष्ट है, और कालद्रव्य की वृत्ति तो स्वतः समयभूत है; इसलिये वह समय विशिष्ट नहीं है।'

श्री जयसेनाचार्य, ऊर्ध्वप्रचय की व्याख्या नीचे लिखे शब्दों में लिखते हैं —

'प्रतिसमयवर्ती पूर्व-उत्तरपर्यायों की मुक्ताफल माला के समान संतान, ऊर्ध्वप्रचय है, उसको ऊर्ध्वसामान्य, आयतसामान्य, क्रम-अनेकांत—ऐसा भी कहने में आता है, वह सर्वद्रव्यों में होता है।'

इस आधार से यह सिद्ध होता है कि 'अकालमृत्यु' भी मुक्ताफल के समान अपने स्वकाल में ही होती है। जो उसका काल अनिश्चित होवे तो मृत्यु, आगे-पीछे से जीवद्रव्य का, पुद्गलद्रव्य का ऊर्ध्वप्रचय भूत, वर्तमान और भविष्य—इन तीनों को स्पर्श न होने से, जीव व पुद्गल का ऊर्ध्वप्रचय ही सिद्ध नहीं होगा।

इसलिये श्री प्रवचनसार, गाथा ९३ में पदार्थ का जो स्वरूप कहा है, उसमें से आयत सामान्य समुदायात्मक द्रव्य सिद्ध न होने से जीव और पुद्गलद्रव्य सिद्ध नहीं होते। एक भी पर्याय को निश्चयनय से असमयवाली (अनिश्चित; आगे-पीछे; उल्टी-सीधी) मानें तो वह जीव ऊर्ध्वप्रचय को नहीं मानता।

छह द्रव्यों में कोई भी द्रव्य, एक समय भी ऊर्ध्वप्रचय बिना रहता ही नहीं है, यदि ऊर्ध्वप्रचय न हो तो द्रव्य ही नहीं कहलायेगा, इसलिये किसी भी द्रव्य की पर्याय को उल्टी-सीधी माने तो उसने ऊर्ध्वप्रचय को नहीं माना।

अकालमृत्यु भी जीव की अशुद्धपर्याय है, वह भी उसके समय में निश्चयनय से नहीं होती—ऐसा माननेवाला, निश्चयनय को ही नहीं मानता होने से वह ऊर्ध्वप्रचय को नहीं मानता, इसलिये वह सर्वज्ञदेव की आज्ञा से बाहर है।

निरुपक्रम और सोपक्रम आयुवाले जीव के मरण का स्वरूप (१) निश्चयनय से व (२) व्यवहारनय से निम्न प्रकार है—

१—निरुपक्रम आयुष्यवाला जीव का मरण, निश्चयनय से स्वकालमरण है, व्यवहारनय से उदयमरण है।

२—सोपक्रम आयुष्यवाले जीव का मरण, निश्चयनय से स्वकालमरण है, व्यवहारनय से उदीरणा मरण अथवा अकालमरण है।

उदयमरण और उदीरणामरण—ऐसे दो विभाग के लिये देखिये—अर्थप्रकाशिका, अध्याय २, सूत्र ५३ की टीका।

जो जीव, अकालमृत्यु को नहीं मानते हैं, वे आयुकर्म के दो विभागों को नहीं मानते; इसलिये उनका वचन असत्य है; ऐसी मान्यतावाले जीव, एकांत निश्चयवादी होने से मिथ्यादृष्टि हैं, किंतु यह बात भी ध्यान में रखना चाहिये कि अकालमृत्यु को व्यवहारनय से स्वीकार करने पर वह मरण, स्वकाल में नहीं हुआ, ऐसा नहीं है। जो जीव, अकालमृत्यु को मानते हैं किंतु निश्चय से वह मरण अपने स्वकाल में नहीं हुआ है और उसका स्वसमय (जब तक वह मरण नहीं हुआ, तब तक वह) अनिश्चित था—ऐसा माननेवाला एकांत व्यवहारनय को माननेवाला है; अर्थात्, व्यवहारनय को ही निश्चयनय मानता है; इसलिये वह भी मिथ्यादृष्टि ही है।

अकालमृत्यु संबंधी जो निश्चय-व्यवहार का स्वरूप ऊपर कहा है, उसे जो एक साथ जानते हैं, उसका ज्ञान, प्रमाण होने से वह सम्यक्-अनेकान्ती है। ऊपर कहे हुये दो नयों का स्वरूप यथार्थ जाननेवाला जब व्यवहारनय को गौण कर, निश्चयनय को जानता है अथवा निश्चयनय को गौण कर, व्यवहारनय को जानता है, तब उसका ज्ञान सम्यक्नयरूप होने से, वह सम्यक् एकान्ती है।

प्रवाहक्रम

११—श्री प्रवचनसार टीका, श्री अमृतचंद्राचार्य कृत, गाथा ९९ में क्रम दो प्रकार का कहा है—(१) विस्तारक्रम (२) प्रवाहक्रम। विस्तारक्रम, प्रदेशों को लागू पड़ता है; प्रवाहक्रम, सूक्ष्म अंशोंरूप परिणामों में लागू पड़ता है। विस्तारक्रम का कारण, प्रदेशों का परस्पर व्यतिरेक है; उसीप्रकार प्रवाहक्रम का कारण, परिणामों का परस्पर व्यतिरेक है। जैसे, आत्मा के प्रदेश इधर-उधर हो जावे—ऐसा नहीं हो सकता; उसीप्रकार पर्यायों का क्रम, आगे-पीछे हो जावे—ऐसा नहीं हो सकता। अनादि-अनंत प्रवाहरूप पूर्व पर्याय का व्यय होकर अगली पर्याय स्वकाल में उत्पन्न होती है।

१२—श्री प्रवचनसार ९९वीं गाथा, पृष्ठ १२६ में लिखा है कि 'जिसने नित्यवृत्ति ग्रहण की है—ऐसे रचित (परिणमित) होते हुए द्रव्य में, अपने-अपने अवसरों में प्रकाशित होते हुये समस्त

परिणामों में पीछे-पीछे के अवसरों पर पीछे-पीछे के परिणाम प्रगट होते हैं, इसलिये और पहले-पहले के परिणाम नहीं प्रगट होते हैं; इसलिये तथा सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति रचनेवाला प्रवाह उपस्थित होने से त्रिलक्षणत्व प्रसिद्धि को प्राप्त होता है।'

पर्यायें अपने-अपने अवसर में

यहाँ परिणाम को (उत्पादरूप पर्याय को) 'अपने-अपने अवसर में प्रगट होती है, आगे-पीछे नहीं'—ऐसा स्पष्ट बताया है। **याद रखिये—**इस गाथा में भी परिणाम शब्द का प्रयोग हुआ है और श्री समयसारजी में पृष्ठ ४४२, गाथा ३०९ में '**जीवस्साजीवस्स दु जे परिणामा**' अर्थात् 'जीव-अजीव का परिणाम' आया है। 'परिणाम' शब्द का अर्थ प्रवचनसार में गाथा ९९ में 'अपने-अपने अवसरों में होनेवाले परिणाम'—ऐसा होता है।

देखिये—यहाँ पर्यायों को (परिणामों को) प्रवाहक्रम कहा है और पर्याय, अपने-अपने अवसर में होती है—ऐसा कहा है, परंतु आगे-पीछे हो जाती है—ऐसा नहीं लिखा है, अर्थात् यहाँ पर भी पर्याय को 'अक्रमिक पर्याय' नहीं कहा है।

पर्यायें स्वकाल में है, परकाल में नहीं—ऐसा अनेकांत

१३—प्रवचनसार टीका, पण्डित हेमराजजी कृत गाथा ११५, पृष्ठ १६१ में नय-सप्तभंगी का स्वरूप आया है, उसके पहले दो भंग में ऐसा कहा है कि द्रव्य की सिद्धि सप्त भंगों से होती है, वह इसप्रकार है, 'स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव; इस तरह अपने स्वचतुष्टय की अपेक्षा द्रव्य, अस्तिरूप है और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव के चतुष्टय की अपेक्षा नास्तिरूप है (द्रव्य, द्रव्यार्थिकनय से ध्रुव है और पर्यायार्थिकनय से उत्पाद-व्ययरूप है)' इससे यह सिद्ध हुआ कि सब द्रव्यों की प्रत्येक पर्याय अपने-अपने स्वकाल से अस्तिरूप है और परकाल की अपेक्षा से नास्तिरूप है, इसलिये पर्याय अपने काल में ही होती है, आगे-पीछे नहीं होती—ऐसा कहा है। देखिये, यहाँ पर भी पर्याय को—'अक्रमिक पर्याय' नहीं कहा है।

पर्यायों क्रमानुपाती तथा स्वकाल में है, परकाल में नहीं—ऐसा अनेकांत

१४—प्रवचनसार, गाथा ११३, पृष्ठ १४७ में लिखा है कि—'पर्यायें पर्यायभूत स्वव्यतिरेक-व्यक्ति के काल में ही सत् (विद्यमान) होने से, उनसे अन्य कालों में असत् (अविद्यमान) ही है—और पर्यायों का, द्रव्यभूत अन्वयशक्ति के साथ गुँथा हुआ (एकरूपता से युक्त) जो क्रमानुपाति (क्रमानुसार) स्वकाल में उत्पाद होता है, उसमें पर्यायभूत स्वव्यतिरेक-

व्यक्ति का पहले असत्व होने से, पर्यायें अन्य हैं।' यहाँ दो प्रकार हैं—(१) हर एक पर्याय अपने स्वकाल में होती है, अन्य कालों में नहीं होती—ऐसा अनेकांत बताया है। (२) अनादि-अनंत पर्यायों को 'क्रम-अनुपाती' कहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि सभी पर्यायें अपने-अपने काल में ही होती हैं, आगे-पीछे नहीं होती। देखिये, यहाँ भी किसी भी पर्याय को 'अक्रमिक पर्याय' नहीं कहा है।

पर्याय : न्यायशास्त्र में क्रमबद्ध

१५—न्याय शास्त्र श्री परीक्षामुख में—श्री माणिक्यनन्दी प्रणीत-अध्याय चौथा, सूत्र ८, पृष्ठ १८१ में लिखा है कि 'एकस्मिन् द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः (पर्याय) आत्मनिहर्ष विषादादिवत्॥८॥' एकद्रव्य विषै क्रमभावी परिणाम है, वह पर्याय है। देखिये, यहाँ पर भी 'क्रमभावी' परिणाम को पर्याय कहा है, किन्तु 'अक्रमिक पर्याय' नहीं कहा है। दूसरी बात यह है कि—इस सूत्र को इसी ग्रंथ के तीसरे अध्याय का सूत्र १३, पृष्ठ ९५ के साथ पढ़ने से मालूम होता है कि हरेक पर्याय अपने-अपने काल में होती है, आगे-पीछे कोई भी पर्याय नहीं होती है। इस सिद्धांत को समयसार में 'क्रम-नियमित' परिणामों कहा है और इसको हिन्दी व गुजराती में 'क्रमबद्धपर्याय' के नाम से संबोधित किया गया है। (इस विषय में 'क्रमबद्ध पर्याय' का नीचे लिखने में आया है, वह साथ-साथ पढ़ लेना।)

क्रम का अर्थ

श्री भक्तामर स्तोत्र, काव्य ४१ में '**आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशंकः**'—यह पद आया है, वहाँ क्रम-पग (पाद) के अर्थ में आया है। क्रम का अर्थ काल अपेक्षा एक के बाद एक और भाव की अपेक्षा दाहिना पैर के बाद बाया पैर, बायें पैर के बाद दाहिना पैर, इसप्रकार होता है। इससे यह निश्चित होता है कि 'क्रम' शब्द का अर्थ 'क्रमनियमित' होता है। किंतु आगे-पीछे होनेवाला नहीं होता।

नाटक समयसार में बनारसीदासजी कहते हैं कि '**दरब जो वस्तु, क्षेत्र सत्ता भूमि, काल चाल, स्वभाव सहज मूल सकति बखानिये।**' इसमें भी सिद्ध होता है कि हरेक पर्याय अपने काल में होती है और 'क्रम' शब्द का अर्थ चाल (पाद-विक्षेप) होता है।

कितने ही लोग 'क्रम' शब्द का अर्थ करने में बड़ी गड़बड़ी करते हैं। 'क्रम' शब्द का अर्थ एक ही समय में एक ही पर्याय—ऐसा अर्थ वे करते हैं। क्रम का ऐसा अर्थ करने के लिये आगम

का आधार बताते नहीं। 'क्रम' का अर्थ 'पाद-विक्षेप' होता है, यह बात स्पष्ट है। एक ही समय में एक ही पर्याय होती है—यह मान्यता गलत है, क्योंकि एक शुद्ध परमाणु की स्पर्श गुण की चार पर्यायों में से दो पर्यायें एक साथ होती हैं, शीत-उष्ण में से एक और स्निग्ध-रूक्ष में से एक—ऐसी दो पर्यायें होती हैं और सूक्ष्म स्कंध में भी हरेक परमाणु की इसीप्रकार दो-दो पर्यायें होती हैं। स्थूल स्कंधों में स्पर्श-गुण की आठ पर्यायों में से चार होती हैं, शीत-उष्ण में से एक, रूखा-चिकना में से एक, कड़ा-नरम में से एक, हल्का-भारी में से एक—इसप्रकार एक समय में चार पर्यायें होती हैं।

ज्ञानगुण की सम्यक्रूप से पाँच पर्यायें होती हैं, उनमें से किसी को सुमति, सुश्रुत, सुअवधि, मनःपर्ययज्ञान—ऐसे चार ज्ञान का उघाड़ एक ही साथ होता है। किसी को दो का, किसी को तीन का और केवलज्ञान हो तो एक का। छद्मस्थ का उपयोग दर्शनरूप होवे तो ज्ञानोपयोग न होने पर भी जितने प्रकार का ज्ञान का विकास है, उतने प्रकार की पर्यायों का एक समय में लब्धिरूप परिणमन होता है, उसीप्रकार दर्शन गुण की एक समय में अनेक पर्यायों की विधि यथासंभव लागू पड़ती है।

चारित्रगुण की अनेक प्रकार की विकारी पर्यायें एक साथ होती हैं। जैसे - क्रोध, मान, माया, लोभ में से एक, नोकषाय में से उसके अनुकूल विकारी पर्यायें एक समय में चारित्रगुण की भी होती है, इसलिये एक समय में एक गुण की एक ही पर्याय होती है, यह मान्यता गलत है।

श्री प्रवचनसारजी, पृष्ठ ९० में लिखा है कि 'एक समयमात्र की मर्यादावाला काल परिणाम होने से परस्पर अप्रवृत्त अन्वय व्यतिरेक, वे पर्यायें हैं; 'इसलिये उत्पत्तिरूप पर्याय का एक समय का ही काल है, दो समय स्थाई कोई भी पर्याय नहीं है—ऐसा अनेकांत से सिद्ध होता है।'

क्रमवर्ती का अर्थ

श्री पंचाध्यायी, प्रथम भाग, गाथा १६७ में क्रम का अर्थ और गाथा १६८ में क्रमवर्ती का अर्थ दिया गया है। गाथा १६७ में कहा है—''यहाँ पग से गमन करनेरूप अर्थ में प्रसिद्ध 'क्रम' एक धातु है। इस धातु का पादविक्षेपरूप अपने अर्थ को उल्लंघन न करने से **जो क्रमण करता है, वह क्रम है**—ऐसा सिद्ध होता है।' गाथा १६८ में जिस कारण से पर्यायें यह क्रम के साथ रहती है अथवा वह क्रमरूप से भवनशील है अथवा क्रम ही है वर्तनेवाला जिसका, यह ही अर्थ से क्रमवर्ती है।''

पर्यायें क्रमबद्ध

देखिये, यह दो गाथा स्पष्टरूप से दर्शाते हैं कि उत्पादरूप पर्याय को क्रमरूप कहो वा क्रमवर्ती कहो, परन्तु उसका अर्थ एक ही होता है कि सब पर्याय पादविक्षेप की तरह क्रमबद्ध ही होती हैं, क्रम से वर्तना—ऐसा उसका स्वभाव है, परन्तु किसी भी पर्याय का स्वभाव अक्रम अर्थात् आगे-पीछे होने का है ही नहीं, यह उत्पादरूप पर्याय का अर्थ है।

श्री प्रवचनसार में गाथा ५५ में पर्याय को 'पदे पदे' ऐसे शब्द द्वारा सम्बोधन किया है। श्री प्रवचनसार, गाथा १३३ में 'प्रतिपदम्' इस शब्द द्वारा पर्याय को सम्बोधित किया है, इससे भी सिद्ध होता है कि पर्याय का दूसरा नाम पग, काल-चाल और पाद होता है और हरेक पर्याय नियमितरूप से अपने-अपने काल में होती है, किन्तु आगे-पीछे नहीं होती।

पर्यायमाला और क्रमबद्ध एकार्थ है

प्रवचनसार, गाथा ३३ की टीका में लिखा है कि 'ज्ञेय तो लोक और अलोक के विभाग से विभक्त अनंत-पर्याय-माला से आलिंगित स्वरूप से सूचित (प्रगट, ज्ञात) नाशवान दिखाई देता हुआ भी ध्रुव ऐसा षट्द्रव्य समूह अर्थात् सब कुछ है।'

श्री प्रवचनसार, गाथा ९९ की टीका तथा गाथा १०७ में 'प्रति समयवर्ती पूर्व-उत्तर पर्यायों ने,' गाथा २३ में 'पर्यायमाला,' गाथा १०७ में पर्यायों का 'मोती की माला', गाथा ९९ में 'मोती का हार', गाथा १०७ की टीका में श्री जयसेनाचार्य ने 'मोती के हार की भाँति', गाथा २०० में 'मोती की माला' के रूप में सम्बोधित किया है, जिससे सिद्ध होता है कि हरेक समय की हरेक गुण की हरेक पर्याय 'क्रमबद्ध' होती है, आगे-पीछे नहीं होती; इसलिये कोई भी पर्याय 'अक्रमिक' है—ऐसा मानना संशयवाद है, यथार्थ नहीं है।

क्रम और अक्रम का अनेकांत

श्री समयसार, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, परिशिष्ट, पृष्ठ ५९४ में कहा है कि 'फिर उसी में नित्य मस्ती करते हुए (लीन रहते हुए) वे मुमुक्षु, जो कि स्वतः ही क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेकांत की (अनेक धर्म की) मूर्तियाँ हैं, वे साधकभाव से उत्पन्न होनेवाली परम प्रकर्ष की कोटिरूप सिद्धि भाव के भाजन होते हैं।'

(अनेक अन्त अर्थात् अनेकान्त। पर्याय को क्रमरूप और गुण को अक्रमरूप कहकर अनेकान्त बताया है।)

श्री समयसार, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, परिशिष्ट, पृष्ठ ५९६ में लिखा है कि 'क्रमभावी पर्यायदृष्टि से देखने पर क्षणभंगुर दिखाई देती है, और सहभावी गुणदृष्टि से देखने पर ध्रुव..... ऐसा द्रव्य-पर्यायात्मक अनंत धर्मोंवाला वस्तु का स्वभाव है।' यहाँ पर्याय को क्रमभावी और गुणों को सहभावी कहकर अनेकांत बताया है तथा पूर्व में कहे हुए नं० ४-५-६-७ में क्रम और अक्रम का अनेकांत आया है। वहाँ सब जगह पर पर्याय को क्रम और गुण को अक्रम—ऐसा अनेकान्त कहा है, किंतु उत्पाद-व्ययरूप पर्याय को अक्रमिक नहीं कहा है।

सम्यक् और मिथ्या अनेकांत

श्री प्रवचनसार, गाथा २३५ में उसीप्रकार का अनेकांत आया है। किसी भी जगह उत्पादरूप पर्याय को क्रमिक और अक्रमिक—ऐसा कल्पित अनेकांत नहीं आया है। कल्पित अनेकांत मानना, यह मिथ्या अनेकांत है, वस्तु में जो धर्म न हो, उस धर्म की उस वस्तु में कल्पना करके अनेकांत कहना, वह मिथ्या अनेकांत है।

न्याय शास्त्र में पर्यायों को कृति का और रोहिणी के दृष्टांत से क्रमबद्ध सिद्ध किया है।

क्रमभावी का अर्थ

क्रमभावी अर्थात् क्रमभाववाला, क्रम का अर्थ परीक्षामुख अध्याय ३, सूत्र ८, पृष्ठ ९५ में लिखा है '**पूर्वोत्तर चारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रम भावः ॥१३॥** याका अर्थ—पूर्वोत्तर कहिये पहली पीछे होय, ते कृतिका नक्षत्र का उदय अर रोहिणी का उदय पूर्वोत्तर चारी है तिनकै क्रमभाव नियम है। बहुरि कार्य-कारण के जैसे धूम कै अर अग्नि कै कार्य-कारण भाव है, तिनकै क्रमभाव नियम है ॥१३॥

देखिये, यहाँ पर क्रमभाव बतलाने के लिये कुदरत का दृष्टांत देकर कहा है कि कृतिका नक्षत्र का उदय और रोहिणी नक्षत्र का उदय पूर्व-उत्तरवर्ती है, उनका क्रमभाव नियम है। इस कुदरती दृष्टांत से यह सिद्धांत फलित होता है कि हरेक पर्याय क्रमभावी होती है। इस नियम को क्रमभावी कहो या क्रमबद्ध कहो, एक ही बात है। कृतिका नक्षत्र का उदय और रोहिणी का उदय अनादि से अनंत काल तक पूर्व-उत्तरचारी होता है, उसमें कोई भी फेरफार नहीं कर सकता; इसप्रकार पर्याय क्रमभावी होने से क्रमबद्ध है, उसे आगे-पीछे करने में कोई भी समर्थ नहीं है।

क्रम-अनेकांत क्रमानुपाती और क्रमबद्ध, सब एकार्थ हैं।

क्रम-अनेकांत का अर्थ—पूर्व-उत्तर क्षणवर्ती पर्यायें क्रम से होती हैं, दूसरे किसी भी

प्रकार से नहीं होती, इसलिये यह सिद्ध हुआ कि पर्यायें क्रमबद्ध होती हैं। 'अक्रमिक पर्याय' जगत में कभी होती ही नहीं, आगम में किसी भी पर्याय को 'अक्रमिक पर्याय' नहीं कहा है।

क्रम-अनुपाती का अर्थ—श्री प्रवचनसार, गाथा ११३ में प्रत्येक द्रव्य की पर्याय निश्चित स्वकाल से होती है, जिस समय जो पर्याय होनी हो, वह उस समय न होवे तो स्वकाल नहीं कहलाता। बम का पड़ना, नदी के प्रवाह को फेरना, यह सभी अपने-अपने स्वकाल से है, परकाल से नहीं है—ऐसा अनेकांत है। जो पर्याय, जिस काल में होनेवाली हो, उसी काल में हो, अन्य कालों में नहीं। इस गाथा की संस्कृत टीका, पृष्ठ १४७ में लिखा है कि '**यश्च पर्यायाणां द्रव्य भूतान्वयशक्त्यानुस्यूतः क्रमानुपाती स्वकाले प्रादुर्भावः तस्मिन्पर्यायभूताया आत्मव्यतिरेकव्यक्तेः पूर्वसत्त्वपर्याया अन्य एव।**' इससे सिद्ध होता है कि द्रव्य में अनादि-अनंत पर्यायें एक-दूसरे के साथ अनुस्यूति (संधि की हुई) होने से क्रम-अनुपाती कहने में आता है। स्वकाल में उसका प्रादुर्भाव होता है, इसलिये पर्याय को कोई भी आगे-पीछे करने का सामर्थ्य नहीं रखता।

क्रमबद्ध का यथार्थ निर्णय अकर्तृत्वरूप ज्ञाता-दृष्टापना प्रगट करने का और अज्ञान के नाश का उपाय

क्रमनियमित—यह शब्द श्री समयसारजी में गाथा ३०८ से ३११ तक की संस्कृत टीका, पृष्ठ ४४४ में दो बार आया है, ये गाथायें आत्मा का अकर्तापना बताती हैं। श्री समयसारजी में कर्ताकर्म अधिकार, गाथा ६९ से १४४ तक आया है, उसका आशय यह है कि जीव, अनादि से परद्रव्य का एकत्वबुद्धि द्वारा कर्ता अज्ञान से मानकर प्रवर्तता है और रागादि विभावों का कर्ता बनता है, इसलिये जब तक आत्मा और आस्रव इन दोनों का विशेषांतर जीव नहीं जानते हैं, तब तक वे अज्ञानी रहते हैं और जब वे दोनों का विशेषांतर जानते हैं, तब ज्ञानी होते हैं। (देखो, गाथा ६९ से ७१ तक) श्री समयसारजी, गाथा १२७, पृष्ठ २०० की टीका में लिखा है कि 'अज्ञानी के सम्यक् प्रकार से स्व-पर का विवेक न होने के कारण भिन्न आत्मा की ख्याति अत्यंत अस्त हो गई होने से, अज्ञानमय भाव ही होता है और उसके होने से, स्व-पर के एकत्व के अध्यास के कारण ज्ञानमात्र ऐसे निज में से (आत्मस्वरूप में से) भ्रष्ट हुआ, पर ऐसे राग-द्वेष के साथ एक होकर जिसके अहंकार प्रवर्त रहा है—ऐसा स्वयं 'यह मैं वास्तव में रागी हूँ, द्वेषी हूँ (अर्थात् यह मैं राग करता हूँ,

द्वेष करता हूँ)' इसप्रकार (मानता हुआ) रागी और द्वेषी होता है, इसलिये अज्ञानमय भाव के कारण अज्ञानी अपने को पर ऐसे राग-द्वेषरूप करता हुआ कर्मों को करता है।' तथा गाथा ९७ में स्वयं कुन्दकुन्द प्रभु कहते हैं कि 'इसलिये निश्चय के जाननेवाले ज्ञानियों ने उस आत्मा को (अज्ञानी को) कर्ता कहा है, ऐसा निश्चय से जो जानता है, वह (ज्ञानी होता हुआ) सर्व कर्तृत्व को छोड़ता है।'

आलापपद्धति, श्री देवसेन सूरि विरचित पृष्ठ १०५ में संकरादि आठ दोषों का वर्णन किया है, उसमें लिखा है कि 'वस्तु का नियमित आकार, नियमित क्षेत्र, नियमित काल और नियमित भावरूप से ज्ञान नहीं होने को अप्रतिपत्ति दोष कहते हैं।'

देखिये, जो अशुद्ध द्रव्य की भविष्य की पर्याय नियमित न हो—ऐसा बन ही नहीं सकता क्योंकि ऐसा होवे तो उसका ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिये अशुद्ध द्रव्य की कोई भी भविष्य की पर्याय अनियमित है, अनिश्चित है—ऐसा मानने में अप्रतिपत्ति दोष आता है। इसके फलस्वरूप यह हुआ कि सब पर्यायें क्रमबद्ध हैं, कर्तापने के दोष का अभाव करने के लिये ऐसा मानना हरेक विवेकी जीव का कर्तव्य है।

इस सिद्धांत को विशेष स्पष्ट करने के लिये अर्थात् जीव 'अकर्ता' है—ऐसा बताने के लिये समयसार, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार, गाथा ३०८ से ३११ तक का आधार दिया है। अब विचारिये—जो किसी भी द्रव्य की पर्याय क्रमबद्ध न हो और आगे-पीछे हो सकती हो तो जीव को कभी भी परद्रव्य का अकर्तृत्व (ज्ञाता-दृष्टापना) नहीं प्रगटेगा और अपनी पर्याय में जो कुछ पर्याय आगे-पीछे हो सकती है तो आगे-पीछे करने का राग (विकल्प) कभी भी नहीं छूटेगा और जीव को ज्ञाता-दृष्टापना कभी भी प्रगट नहीं होगा, इसलिये इस गाथा में सब द्रव्यों की पर्यायें क्रमबद्ध होती हैं—ऐसा हेतु बताकर जीव को अकर्ता (ज्ञाता-दृष्टा) सिद्ध किया है।

जो जीव, क्रमबद्धपर्याय के सिद्धांत को नहीं मानते हैं, उनको कर्तापने का अज्ञान मिटकर अकर्तापना (ज्ञाता-दृष्टापना) कभी भी प्रगट नहीं होगा। श्री गाँधीजी कृत बड़ा जोड़नी कोष के आधार से यहाँ क्रमनियमित शब्द का अर्थ क्रमबद्ध करने में आया है। इसका कारण निम्न प्रकार है—

क्रमबद्ध—यह क्रमनियमित का गुजराती अनुवाद

'क्रमनियमित' शब्द संस्कृत भाषा का है तथा किसी भी प्रसिद्ध आचार्य ने गुजराती, हिन्दी

भाषा में द्रव्यानुयोग का कोई भी शास्त्र नहीं लिखा है, इसलिये उन शास्त्रों में 'क्रमबद्ध' शब्द न आवे, यह स्वाभाविक है। विक्रम सम्वत् १९९७ में श्री समयसार का गुजराती भाषा में अनुवाद प्रथम बार प्रसिद्ध हुआ, उसमें सर्वप्रथम गुजराती भाषा में क्रमनियमित का अर्थ 'क्रमबद्ध' किया गया है, इसलिये परिणामों को क्रमबद्ध कहो या क्रमनियमित कहो, इसमें कोई अंतर नहीं है।

'नियमित' का अर्थ जीव की चैतन्यरूप और पुद्गल की जड़रूप पर्याय का निश्चितपना ऐसा कोई अर्थ करते हैं, यह गलत है क्योंकि इतना मात्र अर्थ करने से कर्तापना मिट नहीं सकता और सर्वविशुद्धज्ञान प्रगट नहीं होता और 'नियमित' का अर्थ जिस समय जो पर्याय होनेवाली होती है, उस समय वही होती है—ऐसा अनुभव में आये, तब ही कर्तापना का अज्ञान मिट सकता है।

नियमरूप निष्कंप होते हैं—देखो समयसार, कलश २७५।

नियमित का अर्थ—श्री समयसारजी में ३०८ से ३११ तक की गाथाओं में अकर्तापना बताया है। जीव का परिणाम अजीव नहीं है और अजीव का परिणाम जीव नहीं है—ऐसा बताने के लिये क्रमनियमित शब्द का प्रयोग करने की कोई जरूरत नहीं थी, क्योंकि जो कोई ऐसा कहते हैं कि प्रथम तो जीव अपने परिणामों से उत्पन्न होता हुआ जीव ही है, अजीव नहीं है और अजीव भी इसीप्रकार अपने परिणामों से उत्पन्न हुआ अजीव ही है, जीव नहीं है। इतनी बात सिद्ध करने के लिये क्रमनियमित शब्द की कोई आवश्यकता नहीं है, क्रमनियमित तो परिणामों का स्वरूप बताने के लिये विशेषण है और अनादिकाल से अनंत काल तक का हरेक परिणाम अपने स्वकाल में ही होता है, अर्थात् आगे-पीछे या उलट-सुलट कभी होता ही नहीं है।

क्रमबद्ध शब्द का प्रयोग हिन्दी अनुवाद में ५० वर्ष पहले पण्डित लालारामजी ने किया है।

आचार्य श्री विद्यानंदजी कृत श्री पात्रकेशरी स्तोत्र कलकत्ता से हिन्दी अनुवादसहित ५० वर्ष पहले प्रसिद्ध हुआ है, इसका हिन्दी अनुवाद पण्डित लालारामजी ने किया है, उसमें पृष्ठ १४, श्लोक १४ में लिखा है कि 'जैसे मनु के बनाये हुए सूत्र—इसीप्रकार वेद के बनानेवाले का नाम भी सुनने में आता है। इसलिये वह भी किसी न किसी का बनाया हुआ अवश्य है, इसके सिवाय वेदों के सुवंत तिङंत (शब्द क्रियायें) आदि अनेक पदों के समूह की रचना क्रमबद्ध दिखाई पड़ती है, जिसकी रचना क्रमबद्ध होती है, वह मनु के सूत्रों के समान किसी न किसी का बनाया अवश्य है।' इसमें 'क्रमबद्ध' शब्द दो बार आया है; वहाँ 'प्रतिनियम' शब्द का संस्कृत अनुवाद 'क्रमबद्ध'

करने में आया है। क्रमबद्ध शब्द प्रथम गुजराती समयसार में आया है—ऐसा नहीं है, किंतु श्री पात्रकेशरी स्तोत्र का अनुवाद लगभग ५० वर्ष पहले हुआ था। उसमें प्रथम आया है। 'प्रतिनियाम' कहो, 'क्रमनियमित' कहो, 'प्रतिनियत' कहो, 'ज्ञान प्रतिनियत' कहो, 'क्रमबद्ध' कहो, इनमें (शाब्दिक अंतर होने पर भी) तात्त्विक अंतर नहीं है, इसलिये 'क्रमनियमित' शब्द का 'क्रमबद्ध'—ऐसा अनुवाद न्यायपूर्वक है।

प्रतिनियाम आदि शब्द एकार्थ वाचक है

श्री विद्यानन्दस्वामी ने आप्तमीमांसा का १५वाँ श्लोक की टीका में लिखा है कि 'तथा स्वद्रव्य के समान परद्रव्य से भी यदि सत्त्व मान लिया जाता है तो द्रव्यों का 'प्रतिनियम' होने में विरोध आ जायेगा।' यहाँ 'प्रतिनियम' का अर्थ 'नक्की होना' के रूप में आया है। 'क्रमबद्ध' भी प्रतिनियम का नियम बताता है।

क्रमबद्ध का हिन्दी में अनेक स्थानों में प्रयोग

वीर निर्वाण संवत् २४७९, विक्रम संवत् २००९ में पाटनी ग्रंथमाला से समयसार का हिन्दी अनुवाद प्रसिद्ध हुआ, उसका अनुवाद पण्डित परमेष्ठीदासजी (न्यायतीर्थ) ने किया है, उसमें भी पृष्ठ ४४४ में क्रमनियमित का अनुवाद 'क्रमबद्ध' करने में आया है।

आत्म-संबोधन, पुस्तक (क्षुल्लक मनोहरलालजी वर्णी कृत) जो विक्रम संवत् २००८ में छपी है, उसमें पृष्ठ ८४ में लिखा है कि 'क्रमबद्धपर्याय पर विश्वास रखकर बुद्धिपूर्वक कुछ न करने का महान पुरुषार्थ करो।' (क्रमशः)

सम्यग्दृष्टि को नि:शंकित आदि

आठ निश्चय गुणों द्वारा निर्जरा

[समयसार गाथा २३२-३३ के ऊपर पूज्य गुरुदेव का प्रवचन]

(सोनगढ़, तारीख २०-४-६२)

ज्ञानी निचली भूमिका में हो या उच्च दशा में हो, किंतु त्रैकालिक ज्ञायकस्वभाव का ही आदर करनेवाला होने से हेय (त्यागनेयोग्य-अशुद्धता) और उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य-शुद्धता)के विवेक में कभी आकुलित नहीं होता, इसलिये उसकी अमूढ़दृष्टि होती है।

प्रयोजनभूत तत्त्व को जाने बिना दु:ख का उपाय छोड़कर, सुख के उपाय में प्रवृत्ति नहीं हो सकती। सच्चे देव, शास्त्र, गुरु, जीवादि नौ तत्त्व, छह द्रव्य, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप धर्म, द्रव्य-गुण-पर्याय की स्वतंत्रता, पर से पृथक्ता, स्वभाव की सामर्थ्यता, हित-अहित का स्वरूप, निमित्त-नैमित्तिक संबंध, स्वतंत्रकर्ता, कर्म, करण, आधार इत्यादि का स्वरूप, ये प्रयोजनभूत तत्त्व हैं। सर्वज्ञ वीतराग कथित इन जीवादि तत्त्वों में ज्ञानी की विपरीत दृष्टि नहीं होती। यह किसप्रकार होगा ? अथवा यह दूसरे प्रकार से कहते हैं, उसमें यह सच्चा होगा कि वह ? ऐसी परीक्षा करने में वह घबराता नहीं। अपने हित-अहितरूप भावों को बराबर जानता हुआ नित्य नि:शंकता सहित यथार्थ दृष्टि को धारण करता है, इसलिये सम्यग्दृष्टि जीव को शुद्धि के अनुसार निर्जरा होती है।

उपगूहन गुण द्वारा यह बतलाया जाता है कि सम्यग्दृष्टि जीव निश्चयनय से सिद्ध परमात्मा की भक्ति सहित है। श्री पंचास्तिकाय शास्त्र गाथा १६९ में भी सिद्धभक्ति का कथन है। मैं चैतन्य ज्ञायकबिम्ब हूँ, उसमें सम्यक्श्रद्धा, ज्ञान और एकाग्रता, वह निश्चय से सिद्ध भक्ति है तथा अर्हंत-सिद्ध परमात्मा को उनके लक्षणों से जानकर उनके प्रति बहुमान-विनयरूपभाव आना, वह व्यवहार से सिद्ध भक्ति है।

उपगूहन अथवा उपवृंहण यह सम्यग्दर्शन का गुण अर्थात् पर्याय है। गुण तो त्रिकाल अप्रगट शक्तिरूप ही होता है। सम्यग्दर्शन पर्याय है, गुण नहीं। केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं। इसप्रकार यहाँ निश्चय सम्यग्दर्शन के साथ रहे हुए नि:शंकितत्व, नि:कांक्षितत्व, निर्विचिकित्सा, स्थितिकरण, अमूढ़ता, उपगूहन, वात्सल्य और प्रभावना—ये पर्यायें हैं, गुण नहीं। ये आठ प्रकार चारित्र गुण की पर्याय के भेद हैं।

जो सिद्ध भक्तिसहित हैं, गोपन करें सब धर्म का।
चिन्मूर्ति वो उपगूहन कर, सम्यक्त्वदृष्टि जानना ॥२३३॥

चौथे गुणस्थान में त्याग न हो, किंतु मिथ्यात्व तथा अनंतानुबंधी कषाय का त्याग और निर्मल सम्यग्दर्शनादि का ग्रहण तो होता है, लेकिन बाह्य में विशेष त्याग नहीं होता, क्योंकि चारित्र में कमजोरी से असंयम दशा होने से अस्थिरतारूप चारित्रदोष बहुत होता है, किंतु उसको करने की या रखने की भावना नहीं होती। मैं कब बाह्य-अभ्यंतर निर्ग्रंथ होऊँ, यह भावना रहती है।

गृहस्थदशा में हो अथवा संयोगों में दिखाई देता हो, तथापि अंतर से सबसे उदास होता है, एक समय में परिपूर्ण ऐसे त्रिकाली स्वभाव की महत्ता और क्षणिक विभाव की तुच्छता द्वारा चैतन्य ध्रुवधाम अखंड एक ज्ञायकभावमयपने के कारण समस्त आत्मशक्तियों की वृद्धि करता होने से उसको निर्जरा होती है।

मूल गाथा में दोष को-सर्व विभाव धर्मों को ढँकता है, ऐसा कहा था, यहाँ पर टीका में अस्ति से निर्मलता-शुद्धि की वृद्धि से उपबृंहण कहा है।

जिसे वर्तमान विभाव और त्रिकाली स्वभाव का भेदज्ञान हुआ है, शुभाशुभ वृत्ति उठे, वह मेरी वस्तु नहीं है, अंतर में अनंत ज्ञान, दर्शन, आनन्द, वीर्यशक्ति है, वह मेरा स्व है। ऐसे अनंत गुण निधान स्वरूप को जो जाने, वह ज्ञानी है। आत्मा में एकाग्र होकर स्व को ग्रहण करने की शक्ति सहित जो प्रगट होता है, उस ज्ञान की पर्याय को सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

सम्यग्दृष्टि ने स्वसन्मुख ज्ञान द्वारा अनंतगुणों के पिंडरूप आत्मा को लक्ष्य में लेकर निजशक्ति को अंतरोन्मुख किया है, उससे निर्मल पर्यायशक्ति की वृद्धि होती जाती है, उसको निर्जरा कहते हैं। उपवास की संख्या के आधार से निर्जरा नहीं किंतु परिणामों के अनुसार निर्जरा है।

उपयोग में—शुभ-अशुभभावों के अनुसार बंध है। ग्रहण-त्याग के विकल्परहित, ज्ञान-दर्शनमय एकाकार स्थिर उपयोग का शुद्ध परिणाम है, उसके अनुसार निर्जरा है। नित्य ज्ञायकस्वरूप के आश्रय से अपने में नि:शंक हुआ वह जीव हित-अहितरूप अपने भावों को बराबर जानता है। जो स्वशक्ति को सँभालकर सावधान हुआ, वह किसी के डिगाने से डिगता नहीं है। शक्तिवान का जोर-अंतर में अभेद स्वभाव के ऊपर होने सम्यग्दृष्टि आत्मशक्ति की वृद्धि करनेवाला है, इसलिये उसको पर्याय में अशक्ति के कारण जो बंध होता था, वह नहीं होता।

सर्व भेदों को गौण करनेवाली अखंड ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि में ऐसी शक्ति वर्तती है कि किसी भी समय चैतन्य एकरूप स्वभाव से जो विरुद्ध भाव हैं, उनका आदर नहीं होने देता, तथा स्वसन्मुख ज्ञातापने की धीरता में सावधान रहता है, इसलिये पहले अज्ञानदशा में अपने को भूलकर शुभाशुभराग में अपनापन मानने से जो बंध होता था, वह नहीं होता।

दृष्टि बदल गई कि मैं क्षणिक राग-द्वेष या हर्ष-शोक जैसा और जितना नहीं हूँ किंतु अपार शक्तिवान ज्ञानस्वभावी हूँ, विकार का नाशक हूँ, ऐसे महान सामर्थ्यवान अनंत आत्मबल का भान होने पर पहले जो बंध होता था, वह अब नहीं होता।

द्रव्य-गुण तो नित्य परिपूर्ण है। मात्र पर्याय में हीनाधिकता है, उसको गौण करके, मैं त्रिकाल पूर्ण हूँ—ऐसी दृष्टि से अभेद का अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है। अकषायी पूर्ण आनन्दस्वभाव के लक्ष्य से शुद्धि की वृद्धि होती है। वस्तु जैसी है, उसका उसीप्रकार ज्ञान और माहात्म्य न करे तो संसार में भटकता है।

चैतन्यस्वरूपी आत्मा में संकल्प-विकल्प की वृत्तियाँ नहीं हैं। निश्चयस्वभाव विकल्प से शून्य है तथा शुद्धस्वभाव से परिपूर्ण है। ऐसे स्वभाव की दृष्टि के बल से ज्ञानी को शुद्धि की वृद्धि और अशुद्धि के नाशरूप निर्जरा होती है।

गाथा २३३ का भावार्थ—अपने शुद्धस्वभाव में एकाग्रता वह सिद्ध भक्ति है। त्रिकाली शुद्धस्वभाव में दृष्टि की अर्थात् अन्य ज्ञेयों की ओर दृष्टि नहीं रही, ऐसा होने से शुद्धि की वृद्धि होती है।

ऐसी वस्तुस्थिति भगवान ने देखी है और यह दृष्टि जिसको प्रगट हो उसे निर्जरा होती है।

शुद्ध चैतन्य ध्रुवधाम के ऊपर जिसकी दृष्टि है, वह उपगूहन आदि गुणों द्वारा शुद्धि की वृद्धि करनेवाला है।

धर्मी जीव को अपने धर्म का बहुमान आया है, वह दूसरों के दोष ढँकता है, जिससे धर्म की निंदा हो, वैसा कोई कार्य नहीं करता। वह अपने गुण ढँकता है, किंतु अपने दोषों को छुपाता नहीं है, वह दूसरों के दोषों का आच्छादन करता है।

सम्यग्दृष्टि की भूमिका में आनेवाले विकल्प उसकी योग्यता से विरुद्ध नहीं होते।

भावार्थ—इसप्रकार सम्यग्दृष्टि को आत्म शक्ति की वृद्धि होने से, अज्ञानता से जो बंध होता था, वह नहीं होता। कर्म की निर्जरा होती है और आत्मा बलवान बनती है।

आत्मवीर्य की गति चैतन्य के संमुख हुई है, उससे उसकी पर्याय पुष्ट होती है।

अल्पज्ञता, राग और निमित्त की महिमा की दृष्टि छोड़ और निर्विकार सर्वज्ञ स्वभाव की महिमा कर। यह सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने का उपाय है।

मोक्ष के मार्ग से गया, वह मोक्ष के नजदीक आता है। अल्पकाल में वह केवलज्ञान प्राप्त करने की तैयारी कर रहा है।

सम्यग्दृष्टि की पर्याय में कमजोरी है किंतु अभिप्राय में निर्बलता—कायरता या कमी नहीं है। अभिप्राय तो पूर्ण परमात्मा को स्वीकार करनेवाला है।

पूर्ण सर्वज्ञस्वभाव की रुचि के कारण वह विभाव की रुचि नहीं होने देता। इसप्रकार त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव की महिमा की दृष्टि हुई, उसमें अनंत सच्चा प्रयत्न (उद्यम) है।

असंग ज्ञानानंदस्वरूप को पहिचानकर उसकी श्रद्धा-ज्ञान का अनंत बल देनेवाला यह आत्मा है, ऐसा जानकर अंतर में लीन होना, वह सुखी होने का उपाय है।

दु:ख से मुक्त होना हो, उसने ज्ञान-आनन्दस्वभाव के सन्मुख हो जाना, इसके अतिरिक्त कोई उपाय तीन काल-तीन लोक में नहीं है। समाधि के योगबल से देश को दु:ख से मुक्त कर देंगे, स्वर्ग को नीचे उतारेंगे, ऐसी अन्यमत की बातें अज्ञानी को अच्छी लगती हैं किंतु दु:ख कहाँ है? क्यों हुआ है? उसकी उसे खबर ही नहीं। जीव नित्य आनन्दस्वरूप है, आनन्द शक्ति का सत्व है, उससे विरुद्धता, वह दु:ख है। संयोग से सुख या दु:ख नहीं। अपनी दशा में विपरीत पुरुषार्थ से तू आनन्दस्वभाव को भूला है, वह दु:ख है। परसन्मुख दृष्टि में तेरे दु:ख का सागर भरा है और स्वसन्मुख दृष्टि में तेरे सुख का समुद्र उमड़ रहा है। शरीर में क्षुधा, तृषा या रोग से दु:ख नहीं है, किंतु तेरी दशा में विपरीत मान्यता से दु:ख है।

अंतर्दृष्टि द्वारा कर्मोदय को जीतता है अर्थात् स्वभाव को प्रगट करता है, यही आनन्द का उपाय है।

गाथा २३४ टीका—क्योंकि धर्मी जीव टंकोत्कीर्ण जागृत चैतन्य ज्योति सो मैं हूँ—ऐसी दृष्टि होने पर यदि निर्बलता के कारण च्युत हो तो उसे सम्यक् रत्नत्रयरूप अंतरंग के मार्ग में स्थित करता है, इसलिये स्थितिकरणयुक्त हैं।

दूसरे को भी रत्नत्रय से भ्रष्ट देखकर स्थिर करने का भाव आता है। वह व्यवहार स्थितिकरण है।

तत्त्वार्थ सूत्र में मार्ग से च्युत न होने के लिये एवं निर्जरा हेतु परिषह सहन करने के लिये कहा है, वह निश्चय से है। स्वतंत्र स्वभाव का भान करे, वह भले ही कदाचित् आठ वर्ष की बालिका हो, तथापि सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकती है। यदि वह भेदज्ञान से अपूर्व अंतर करे कि मैं तो नित्य ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा हूँ, शरीर और रागादि मैं नहीं हूँ, शरीर के कार्य मेरे नहीं हैं, इसप्रकार स्वभावभासनरूप भेदज्ञान होने से किसी भी समय उससे च्युत नहीं होता।

सम्यग्दृष्टि राज्य में हो या नरक में हो, किंतु उसको स्वलक्ष्य से शुद्धि की वृद्धि होती रहती है।

किसी को प्रश्न उठे कि वहाँ तो अशुभभाव भी आते हैं, तो शुद्धि की वृद्धि किसप्रकार होगी ? तो उसको कहते हैं कि भाई ! उसे स्वभावदृष्टि की मुख्यता होने से शुद्धि की वृद्धि होती है। चक्रवर्ती राजा की हजारों रानियाँ हैं, इसलिये निर्जरा का नियम उसे लागू न हो—ऐसा नहीं है।

सम्यग्दृष्टि चारों गतियों में चाहे जहाँ हो, स्त्री, पुरुष या नपुंसक हो, फिर उसको निर्जरा होती ही रहती है। वह नरकादि क्षेत्र में नहीं किंतु आत्मा में है। श्रेणिक राजा का जीव भविष्य में तीर्थंकर होगा, इस समय नरक में है। वहाँ भी उसको प्रतिक्षण शुद्धि द्वारा निर्जरा होती है।

योगीन्द्रदेव कृत योगसार दोहे में आता है कि—'सम्यग्दृष्टि जीव का दुर्गति में गमन नहीं होता, कभी हो तो दोष नहीं, पूर्व में बँधे हुए कर्मों का क्षय होगा।' नरक में हो तो भी उसकी दृष्टि रागादि में और संयोगों में नहीं होती; वह सबसे भिन्न ऐसे ज्ञायकस्वभाव में है। स्वभाव की दृढ़ता से बारंबार अंतर अवलोकन करनेवाला सम्यग्दृष्टि होता है, इसलिये उसे निर्जरा होती है।●●

शुद्ध चैतन्य विहारी, भारत की आध्यात्मिक विभूति

पूज्य श्री कानजी स्वामी के

पुनीत कर कमलों में

सादर—समर्पित

अभिनंदन-पत्र

महामानव!

हमारी अकिंचन प्रार्थना पर इस दाहक निदाघ में भोपाल की इस शुष्क धरा पर पुनीत पदार्पण करके शुद्धात्मरसाप्लावित अपनी दिव्यवाणी की-सुधामयी झड़ियों से आपने इस भूमि का जो सरस सिंचन किया है, उस अनुपम दान से उपकृत हम आपका हृदय से स्वागत अभिनन्दन करते हैं।

महामहिम!

जीवन के उन क्षणों में जब मानव यौवन की छलना से प्रवंचित अपने अनमोल पौरुष को रूप के विषाक्त प्याले में घोलकर हत विवेक, ठगासा, लुटासा, कंचन-कामिनी पर अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है, तब आपने पुष्पधन्वा को चुनौती देकर अपने अन्तः तपोभूत ब्रह्मास्त्रों से उसके प्रहारों की पुनरावृत्ति को विफल करके हत-बुद्धि विश्व के समक्ष ब्रह्मचर्य का जो अनुपम आदर्श प्रस्तुत किया वह अनुकरणीय है, तथा आज के भौतिक-मानव के लिये वह एक प्रशस्त दिशा है।

क्रान्ति दृष्टा!

आपका परिवर्तन विश्व के लिये एक महान वरदान है। इस धार्मिक संक्रांति काल में युग की महती आवश्यकताओं का सजीव समाधान बनकर आप इस धरा पर अवतरित हुए। भौतिक जीवन के मूल्य पर भी सत्य को सम्पादित कर आपने अनवरत विश्व को उस सत्य का दान दिया। धर्म के मिस उसकी यवनिका में होते अनाचारों पर आपने वज्र-प्रहार किया। विवसन-वर्द्धमान के निर्ग्रंथ-पथ का बीड़ा अपने शीश पर उठाकर आपने आज के विशृंखल समाज को वीतराग धर्म का जो चिर-स्थायी वैभव उत्ताराधिकार में दिया है, वह अनमोल है और सम्पूर्ण विश्व-विभूतियाँ मिलकर भी उसका मूल्यांकन नहीं कर सकतीं।

युगपुरुष!

आप युग में एक अद्‌भुत मोड़ लाये हैं। वैज्ञानिक-अभिनयों के दास किंतु अपनी बुद्धि के अंत में प्रतिद्ध आज के युग को आपने उस शाश्वत्-सत्य का पता दिया है, जो भौतिक प्रभावों से अत्यंत सुरक्षित तथा अपने अनंत अविनश्वर-वैभव में सदा प्रतिष्ठित हो, जिसके एक क्षण का अवलंबन अनंत-अनंत बंधनों को तोड़कर चैतन्य का काया-कल्प कर देता है। शताब्दियों के उपरांत युग को आपके सदृश कर्मठ एवं निर्भय नेता का नेतृत्व मिला है। आपकी दिव्यवाणी में लोक-कल्याण मुखरित हो उठा है। आपका दिव्य संदेश उस सर्वोदयी उत्कर्ष की घोषणा करता है, जहाँ आराधक एवं आराध्य का भेद विलीन होकर जीवन स्वयं सत्यं शिवं सुन्दरम् का त्रिवेणी तीर्थ बन जाता है।

हे संत!

आपके उपकारों से हम पामर उऋण नहीं हो सकते। हमारी कामना है कि आप युग युग तक जीवें और आपका दिव्य संदेश चिरकाल तक भ्रांत विश्व का पथ-निर्देशन करता रहे।

अंत में श्रद्धा के सुमन आपके चरणों में चढ़ाते हुए हम एकबार हृदय से आपका अभिनंदन करते हैं।

हम हैं आपके विनीत—
दि० जैन समाज भोपाल

श्रुतपंचमी वि.सं. २०२०
दिनांक २७-५-६३

परमोपकारी सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी के पुनीत विहार के समाचार

लाठी (सौराष्ट्र)

वैशाख सुदी दूज पू० स्वामीजी के जन्म-जयंती उत्सव में हजारों की संख्या में बाहर गाँव से मेहमान आये थे, स्वाध्याय भवन नया बना है, और जिनमंदिर में नया विशाल शिखर बनाया गया था, ध्वजारोहण, जिनेन्द्र रथयात्रा, यागमंडल विधानादि, बाहर गाँव से शुभेच्छा के संदेश आदि अनेक विशेषताओं सहित चार दिन का उत्सव सम्पन्न हुआ पूज्य स्वामीजी के प्रति सारा धार्मिक वर्ग का और जिज्ञासुओं का बड़ा भारी प्रेम होने से हरेक गाँव में लाभ लेनेवालों की संख्या बढ़ रही है।

सुरेन्द्रनगर

वैशाखी सुदी ३ यहाँ चार दिन का कार्यक्रम रहा। यहाँ भी दिगम्बर जिनमंदिर है।

जोरावरनगर

श्री जिनेन्द्र पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव था, ता० ३०-४-६३ से ६-५-६३ तक यहाँ बड़ा भारी उत्सव हुआ, सभी जैन जैनेतर समाज ने बड़े प्रेम वात्सल्यतापूर्वक उत्तम सहयोग दिया और भाग लिया और सभी को पूज्य गुरुदेव के प्रवचन सुनने का मुख्य ध्येय था। यहाँ मुख्य व्यक्ति श्री अमुलख लालचंद, श्री पोपटलाल मोहनलाल वोरा तथा श्री चिमनभाई आदि थे जिनमंदिर दो मंजिल का मनोज्ञ है, १९ जिनबिम्बों का पंचकल्याणक हुआ, अजमेर भजन मंडली का कार्यक्रम हमेशा था, जन्मकल्याणक आदि अवसर पर हाथी ऊपर भगवान को विराजमान करके जिनेन्द्र रथयात्रा हुई थी, उत्सव सब प्रकार व्यवस्थित और आनन्द दाता था, प्रतिष्ठाचार्य पण्डित श्री नाथुलालजी शास्त्री (इन्दौर) थे, बम्बई के समान यहाँ बड़ी भारी संख्या में जिज्ञासु एकत्र होते थे। वढवाण, जोरावरनगर, सुरेन्द्रनगर तीनों गाँव के मुमुक्षु भाईयों ने मिलकर महोत्सव सफल बनाया। सभी को धन्यवाद।

वढवाणशहर—वर्धमानपुरी—

यहाँ भी जिनमंदिर है। तीन दिन का कार्यक्रम था।

लींबड़ी शहर—

यहाँ बड़ा भारी जिनमंदिर है, पूज्य गुरुदेव तीन दिन ठहरे।

दहेगाम (अहमदाबाद)—

यहाँ नवनिर्मित दिगम्बर जैन मंदिर में वेदी प्रतिष्ठा का बड़ा भारी आयोजन व उत्साह से पंचकल्याणक जैसा शानदार महोत्सव मनाया गया, यहाँ सब भाई श्वेताम्बर थे। १५ साल से अमुक भाई पूज्य स्वामीजी का उपदेश से जैनधर्म के पक्के श्रद्धानी हुवे हैं। सुप्रसिद्ध आत्मार्थी विद्वान श्री बाबूभाई महेता (फतेपुर) की प्रेरणा से उत्तर गुजरात के ४२ गाँव के प्राय: सभी दिगम्बर जैन सपरिवार पूज्य स्वामीजी का उपदेश सुनने के लिये और उत्सव में भाग लेने के लिये आये थे, ७ हजार करीब संख्या में मेहमान आये थे, सभी को जीमाने की व्यस्था दहेगाँव मुमुक्षु मंडल द्वारा थी, हरेक गाँव में पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों और तत्त्वज्ञान की चर्चा का लाभ लेने की मुख्यता होती है। धर्म प्रभावना का महान पवित्र कार्य वृद्धिरूप होने में दहेगाँव मुमुक्षु मंडल को धन्यवाद।

अहमदाबाद—

यह गुजरात की राजधानी है। यहाँ दिगम्बर जैन मंदिर की आवश्यकता थी, तारीख १७-५-६३ पूज्य स्वामीजी का आगमन हुआ, भाटिया महाजनवाड़ी में सुंदर सजाये हुये सभामंडप में चार दिन तक सबेरे तथा दोपहर प्रवचन हुए, यहाँ श्वेताम्बर जैन की बड़ी संख्या है, उन्हीं के द्वारा भी अच्छा सहयोग मिला, तारीख १९-५-६३ के शुभ दिन ठि० खाडिया चार रास्ता, दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल द्वारा जिनमंदिर बनाने के लिये शिलान्यास विधि का कार्यक्रम था, श्री नवनीतभाई सी. जवेरी के शुभहस्त से शिलान्यास हुआ और उस समय पूज्य गुरुदेव के शुभहस्त द्वारा नींव की ईंट के ऊपर स्वस्तिक लिखाया गया था, दर्शकों की अपार भीड़ थी, सिद्धचक्रजी की पूजा जाप्य आदि विधि सहित-जयनादों की गूँज सहित श्री जिनमंदिर शिलान्यास विधि सम्पन्न हुई। उस समय एक लाख आठ हजार रुपये का चंदा हुआ था।

दाहोद—

तारीख २१-५-६३ एक दिन के लिये पूज्य स्वामीजी पधारे थे, उत्तम प्रकार स्वागत और प्रवचनादि हुए थे। भोपाल जाते।

सोनकच्छ और शीहोर में—

विश्रांति के लिये पूज्य स्वामीजी ठहरे थे समाज की प्रार्थना से यहाँ भी प्रवचन किये गये थे।

भोपाल—

(म.प्र.) यहाँ समस्त दिगम्बर जैन समाज का आमंत्रण पूज्य स्वामीजी को वेदी प्रतिष्ठा के समय पधारने का था, और समस्त दिगम्बर जैन समाज की अनुज्ञा से सौ० शकरबाई धर्मपत्नी चौधरी श्री बिहारीलालजी ने विशाल स्वाध्याय भवन का निर्माण कराया है और तीसरी मंजिल पर जिनमंदिर बनाया है, जहाँ श्री शांतिनाथ भगवान की स्थापना वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव तारीख २१-५-५३ से प्रारम्भ होकर तारीख २७-५-६३ पूर्ण हुआ। स्वाध्याय भवन का उद्घाटन पूज्य गुरुदेवश्री कानजी स्वामी के शुभहस्त द्वारा हुआ। वेदी प्रतिष्ठा संबंधी कार्य पण्डित श्री जगन्मोहनलालजी शास्त्री तथा पण्डित श्री दयाचन्दजी द्वारा हुआ।

जैनदर्शन शिक्षण वर्ग—

तारीख ११-५-६३ से प्रारम्भ हुआ था शिक्षण वर्ग के पाँच विभाग किये थे। मुख्य अध्यापक में प्रवक्ता आदरणीय (१) श्री खेमचंद भाई जे. शेठ थे आपकी शिक्षण शैली और मनोज्ञ वक्ता के गुण अत्यंत सराहनीय हैं, आपका नाम सुनकर बहुत दूर से बड़ी संख्या में लोग आये थे।

(२) श्री फूलचन्दजी शास्त्री (वाराणसी) आप भी शिक्षणवर्ग में थे उपरांत हमेशा बड़ी सभा में शंका समाधान तथा प्रवचन करते थे। शिक्षण वर्ग में पढ़ानेवालों में ब्रह्मचारी व्रजलाल भाई (वढवाण शहर), श्री देवशीभाई (राजकोट), श्री कैलाशचन्द्रजी (बुलन्दशहर), श्री मधुकरजी (मलकापुर) थे।

जैनशिक्षण वर्ग में लाभ लेनेवालों की संख्या २०० से बढ़कर ४०० तक थी। उसमें पूज्य श्री चिदानंदजी महाराज, श्री पूज्य पूर्णसागरजी महाराज, ब्रह्मचारी राजारामजी, ब्रह्मचारी हेमराजजी आदि त्यागी वर्ग करीब बीस थे। तारीख २३-५-६३ पूज्य कानजी स्वामी भोपाल पधारे तब से मेहमानों की संख्या इतनी बढ़ गई कि क्लास (वर्ग) चलाना कठिन हो गया। पूज्य स्वामीजी के स्वागत जुलूस के बाद श्री शांतिनाथ भगवान के विशाल प्रतिमाजी को रथ में विराजमान करके बड़े समारोह के साथ शहर में घूमकर मंडप में ले गये। पूज्य स्वामीजी भी जुलूस में साथ चलते थे। बाहर गाँव से आनेवाले धर्म जिज्ञासुओं की संख्या ज्यादा थी। २०-२५ तो विदुषी त्यागी महिलायें, २५ करीब विद्वान व पंडित थे और अन्य धर्म प्रेमी सभी को पूज्य स्वामीजी का प्रवचन सुनने की तथा तत्त्वचर्चा, समागम की मुख्य भावना थी। वेदी प्रतिष्ठा उत्सव में करीब बारह हजार उपरांत संख्या ने भाग लिया।

शेठ भगवानदास शोभालाल (सागर निवासी) की प्रेरणा पाकर सागर से तथा अन्य गाँवों से ५०० उपरांत संख्या में श्री तारणस्वामी के अनुयायी दिगम्बर जैन भाई वेदी प्रतिष्ठा पर आये थे, मुख्य उद्देश्य श्री पूज्य कानजी स्वामी का प्रवचन सुनना, समागम तत्त्वचर्चा तथा वेदी प्रतिष्ठा के उत्सव में साधर्मियों का मिलाप होना। श्रीमंत शेठ भगवानदासजी की तीव्र भावना है कि जैन समाज में तत्त्वज्ञान का अभ्यास बढ़े और विशेष रूप से भेदभाव मिटकर सर्व प्रकार दिगम्बर जैन समाज में एकता, प्रेम वात्सल्य बढ़े। तारण समाज के माननीय त्यागी श्री ब्रह्मचारी गुलाबचंदजी तथा ब्रह्मचारी श्री विमलाबाई भी पूज्य कानजी स्वामी का प्रवचन, तत्त्वचर्चा और जिनेन्द्र वेदी प्रतिष्ठा के शुभ अवसर पर लाभ लेने की भावना से आये थे।

विशेष समाचार

भोपाल तारीख २३-५-६३ परोपकारी पूज्य स्वामीजी ने सबेरे विशाल सभा में मांगलिक प्रवचन दिया, दोपहर समयसारजी शास्त्र कर्ता-कर्म अधिकार पर प्रवचन किये, रात्रि को आध्यात्मिक संस्कृति और स्वाध्याय का उद्घाटन का बड़ा उत्सव मनाया, पूज्य स्वामीजी के द्वारा जो परम सत्य का महान प्रकाश फैल रहा है, उसका लाभ लेनेवालों की संख्या सारे देश में बढ़ रही है। उस पवित्र आध्यात्मिक तत्त्वज्ञान की महिमा बतलाने के लिये आध्यात्मिक स्वाध्याय उद्घाटन का कार्यक्रम दर्शक विराट सभा एकत्र होने की व्यवस्था की थी।

सभा में भारत मध्यप्रदेश के मंत्रीवर्ग तथा राज्यपाल श्री हरिविनायक पाटस्कर, श्री मिश्रीलालजी गंगवाल (वित्तमंत्री) आदि उपस्थित थे, पूज्य स्वामीजी भी मंच पर पधारे थे, आमंत्रित मुख्य व्यक्तियों ने पूज्य स्वामीजी का परम उपकार मानकर अध्यात्म तत्त्वज्ञान की सभा को बड़ी भारी आवश्यकता है, जिसका पूज्य स्वामीजी द्वारा उत्तम प्रकाश हो रहा है, तत्त्वज्ञानमय अध्यात्म विद्या द्वारा ही सच्चा सुख प्राप्त हो सकता है। ऐसा कहकर उसकी महिमा-गुणगान किये, सभी ने स्वामीजी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पण करके खुशी मनाई। सभा में प्रारम्भ से ही १० हजार उपरांत श्रोता उपस्थित थे, मंगलाचरण पंडित प्रकाशचंद्रजी (दिल्ली-सम्पादक सन्मति संदेश) द्वारा हुआ, बाद श्री मांगलाल जैन (पद्म) द्वारा (श्री जिनेन्द्र संगीत सेवा संघ) स्वागत गान हुआ, बाद मनोज्ञवक्ता श्री युगलजी एम.ए. साहित्यरत्न (कोटा, राजस्थान) द्वारा स्वागत गान हुआ।

सभी लोग पूज्य कानजी स्वामी का प्रवचन सुनने के लिये तरस रहे थे, प्रार्थना करने से प्रवचन शुरु हुआ, बड़ी रुचि से एकाग्रचित्त होकर सब सुनते रहे, २० मिनिट कहाँ गई पता न लगा,

जब स्वामीजी ने कहा.... 'बस समय हो गया' तब ख्याल आया कि अहो... अध्यात्मरस के अनुपम स्वाददर्शक वाणी सुनने में ऐसा मन लग गया कि बाहर की बात पर लक्ष नहीं जाने से कितना आनन्द आता है.. इस बात का सभी को प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। बाद भैया साहब श्री मिश्रीलालजी गंगवाल को प्रार्थना करने से अपनी सुन्दर वैराग्य रसमय शैली से आपने आध्यात्मिक भजन (सबको साथ में रखकर) सुनाया, स्वामीजी का ठहरने का स्थान आपके वहाँ था, परम प्रेमपूर्वक सेवा भक्ति का लाभ लिया।

तारीख २४-५-६३—सबेरे पूज्य स्वामीजी को बुखार था, प्रवचन दिया, आपका दोपहर का प्रवचन बन्द रहा था, अन्य विद्वानों द्वारा प्रवचन तत्त्वचर्चा का तथा वेदी प्रतिष्ठा संबंधी कार्यक्रम चालू था। रात्रि को श्री पंडित जगन्मोहनलाल शास्त्री द्वारा प्रवचन और शंका समाधान था।

तारीख २५-५-६३—सबेरे माननीय श्री खेमचंदभाई तथा श्री पंडित फूलचंदजी शास्त्री द्वारा १०.०० बजे तक प्रवचन हुआ, तत्त्वज्ञान के अनेक विषयों पर अति स्पष्टता से प्रकाश डाला गया, बाद श्री मिश्रीलालजी गंगवाल (वित्त मंत्री, म.प्र.) जो हृदय से आध्यात्मिक रस के भजन गाते हैं, समझते भी हैं, श्री सूरजमलजी की प्रार्थना पर आपने अति नम्रता से 'आज मेरे समकित सावन आयो' यह श्री भूधरदासजी कृत सुमधुर काव्य सभी भाई-बहिनों को साथ में लेकर बोले, अकेला न बोलकर सभी के हृदय में परम तत्त्व का सच्चे प्रेम का संचार हो इस ढंग से बोले जो कि उस समय कड़ी धूप पड़ रही थी किंतु उसका अनुभव सब भूल गये और अध्यात्मरस के रसिक भक्तजन किसप्रकार के आत्महितार्थ भजन गाते हैं, वह प्रत्यक्ष देखने को मिला।

गुजरात, सौराष्ट्र, बंबई आदि से भोपाल में स्वामीजी द्वारा इस धर्म प्रभावनामय मंगल प्रसंग देखने के लिये और लाभ लेने के लिये ऐसी गर्मी में भी ३००, उपरांत साधर्मीबन्धु आये थे।

तारीख २६-५-६३—पूज्य स्वामीजी द्वारा दोनों समय प्रवचन, वेदी प्रतिष्ठा संबंधी कार्यक्रम, रात्रि को पंडित श्री जगन्मोहनलालजी शास्त्री द्वारा प्रवचन तथा शंका-समाधान बाद अजमेर भजन मंडली को कार्यक्रम रहा।

तारीख २७-५-६३—भगवान श्री शांतिनाथ भगवान की अतिशय सुंदर मनोज्ञ नयी प्रतिमाजी को वेदी पर प्रतिष्ठित करने के लिये विराट रथयात्रा के साथ भगवान को रथ में विराजमान करके भारी उत्साह, भक्ति, नृत्य और साथ में अजमेर भजन मंडली के नृत्य भजन सहित शहर में घूमते हुये नये जिनमंदिर के समीप पहुँचे, अपार भीड़ लगी थी, पूज्य स्वामीजी को

रथ में बैठने की प्रार्थना की, स्वामीजी नम्र भक्त के रूप में रथ के कौने में बैठ गये, साथ में प्रतिष्ठाकार श्री बिहारीलालजी तथा श्री मिश्रीलालजी गंगवाल भी परम भक्ति से बैठे थे, इस समय का दृश्य देखते ही बनता था। रात्रि को पंडाल में सकल दिगम्बर जैन समाज ने पूज्य स्वामीजी के प्रति अभिनंदन पत्र अर्पण किये। ७४ साल की वृद्धावस्था होने पर भी भोपाल पधारकर महान धर्म प्रभावना की, उस अपार उपकार का वर्णन कैसे करें!! इत्यादि... बाद श्री युगलजी एम०ए० (कोटा-राज०) ने पूज्य स्वामी द्वारा परमोपकार और सातिशय धर्म प्रभावना, और बहुत समय से जिस अवसर की तीव्र भावना थी, आपके द्वारा पूर्ण हुई इस विषय में सुंदर काव्य सुनाया। बाहर गाँव से खास धर्म श्रवण, तत्त्वज्ञान की चर्चा, जैनधर्म का शिक्षण वर्ग और वेदी प्रतिष्ठा के महान उत्सव का लाभ लेने के लिये बहुत बड़ी संख्या में मुमुक्षुगण आये थे, सभी को सुविधा देने में अधिक श्रम, तन-मन-धन से सेवा देनेवाले सभी कार्यकर्ता तथा भोपाल दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल को धन्यवाद।

(मुख्य कार्यकर्ता—श्री डालचंदजी, श्री राजमलजी, श्री सूरजमलजी, श्री सौभाग्यमलजी बडकोर, श्री सेजमलजी, श्री प्रेमचंदजी ठेकेदार, श्री बाबूलालजी विनोद आदि थे।)

विदिशा—

(भेलसा, म०प्र०) तारीख २८-५-६३ पूज्य स्वामी का भव्य स्वागत हुआ। बाद प्रवचन हुआ। उस समय श्रोताओं की अपार भीड़ लगी थी, सभी का प्रेम उत्साह तो देखते ही बनता था।

इन्दौर—

तारीख २९ से ०१-६-६३ पूज्य स्वामीजी का भव्य स्वागत हुआ, बड़ी भारी संख्या में जैन-जैनेतर समाज ने जुलूस द्वारा शहर में घुमाकर सब शीश महल के सामने विशाल पंडाल में आये, स्वामीजी द्वारा मंगल प्रवचन हुआ, सेठ श्री राजकुमारसिंहजी द्वारा दिगम्बर जैन समाज की ओर से स्वामीजी का आभार मानकर धर्म प्रभावना का महान अवसर प्राप्त हुआ है, इसप्रकार वर्णन करके खुशी मनाई। हमेशा समयसारजी कर्ताकर्म अधिकार पर दो बार प्रवचन तथा रात्रि को शंका समाधान पूज्य स्वामीजी करते थे, सभा में ठीक समय पर पाँच हजार उपरांत संख्या में धर्म जिज्ञासु हमेशा उपस्थित रहते थे। पूज्य स्वामीजी से शंका-समाधान सुनने में समाज को बड़ा भारी रस आता था। उपरांत श्री खेमचंदभाई तथा श्री लालचंदभाई द्वारा अन्य जिनमंदिर में शंका समाधान और प्रवचन का कार्यक्रम था, इस धार्मिक प्रभावना का लाभ लेने के लिये बाहर गाँव से ४००

उपरांत भाई-बहिन आये थे, सभी को उत्तम प्रकार सुविधा थी। दिगम्बर जैन समाज इंदौर तथा दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल को धन्यवाद। श्री मिश्रीलालजी गंगवाल (वित्तमंत्री) ने भोपाल के माफिक यहाँ भी पूज्य स्वामीजी के पास तथा श्री खेमचंदजी के पास प्रवचन व धर्म चर्चा के प्रत्येक कार्यक्रम में लाभ लिया।

तारीख ३१-५-६३ इन्दौर तिलकनगर में दिगम्बर जिनमंदिर के लिये शिलान्यास पूज्य कानजीस्वामी के शुभहस्त द्वारा कराया गया, ईंटों पर स्वस्तिक कराया गया।

पूज्य स्वामीजी का विहार कार्यक्रम

उज्जैन, तारीख २ और ३-६-६३

सनावद, तारीख ४-६-६३

खण्डवा, तारीख ५-६। ऊन, तारीख ७-६-६३

बड़वानीजी सिद्धक्षेत्र की यात्रा, तारीख ८-६-६३

रास्ते में तारीख ९-१०

सोनगढ़, तारीख ११-६-६३

पूज्य गुरुदेव के उद्‌गार

ॐ

नमः सिद्धेभ्यः

भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव समय प्राभृत में कहते हैं कि—मैं जो यह भाव कहना चाहता हूँ, वह अंतर के आत्म साक्षी के प्रमाण द्वारा प्रमाण करना; क्योंकि यह अनुभव प्रधान शास्त्र है; इसमें मेरे वर्तते हुए स्व-आत्मवैभव द्वारा कथन किया जाता है। ऐसा कहकर छठवीं गाथा प्रारम्भ करते हुए आचार्य भगवान कहते हैं कि—'आत्मद्रव्य अप्रमत्त नहीं है और प्रमत्त नहीं है अर्थात् इन दो अवस्थाओं का निषेध करता हुआ मैं एक ज्ञाता अखण्ड हूँ—ऐसा अपनी वर्तमान वर्तती हुई दशा से कहता हूँ।' मुनिपने की दशा अप्रमत्त और प्रमत्त इन दो भूमिकाओं में हजारों बार आती-जाती है; उस भूमिका में वर्तते हुए महामुनि का यह कथन है।

समय प्राभृत अर्थात् समयसाररूपी भेंट। जिसप्रकार राजा से मिलना हो तो भेंट देना होती है, उसीप्रकार अपनी परम उत्कृष्ट आत्मदशास्वरूप परमात्मदशा प्रगट करने के लिये समयसार जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप आत्मा, उसकी परिणतिरूपी भेंट देने से परमात्मदशा-सिद्धदशा-प्रगट होती है।

इस शब्दब्रह्मरूप परमागम से दर्शाये हुए एकत्वविभक्त आत्मा को प्रमाण करना, स्वीकार ही करना, कल्पना नहीं करना। इसका बहुमान करनेवाला भी महाभाग्यशाली है।

(-गुरुदेव के अपने ही हस्ताक्षरों से)

नया प्रकाशन

समयसार प्रवचन भाग ४

कर्ता-कर्म अधिकार पर पूज्य श्री कानजी स्वामी द्वारा विस्तार से प्रवचन (गाथा ६९ से १४४) अंधकार हटाना नहीं पड़ता, प्रकाश होते ही अंधेरा उत्पन्न नहीं होता; इसप्रकार निर्मल तत्त्वज्ञान का अभ्यास करके भेदविज्ञान ज्योति अपनी आत्मा में प्रगट करने से अनादिकालीन महान भूल मिट जाती है। श्री समयसारजी शास्त्र में अत्यन्त अप्रतिबुद्ध अपूर्व तत्त्वज्ञान समझाया है।

कर्ता-कर्म के संबंध में जीव की भूल होने से मिथ्या अभिप्राय वश अज्ञानी जीव दु:खी हो रहा है, वह भूल कैसे मिटे, स्वानुभव कैसे हो, यह बात स्पष्ट करके समझाई है।

पृष्ठ संख्या ५६४, कपड़े की जिल्द, मूल्य (लागत से भी बहुत कम है) ४-०, पोस्टेज १-६० अलग।

अनुभवप्रकाश

लेखक, अनुभवी विद्वान श्री दीपचंदजी कासलीवाल जो २०० वर्ष पूर्व हो गये। इस ग्रंथ में आत्मानुभव को सुगम-रीति से समझाया गया है। पृष्ठ १२६, मूल्य ०-३५ पोस्टेज अलग।

शासन प्रभाव

जिसमें पूज्य कानजी स्वामी का जीवन चरित्र भी है। मूल्य ०.१२।

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

पंचास्तिकाय	४ ॥)
नियमसार	५ ॥)
समयसार, पृष्ठ ६१६ बड़ा साइज	५)
मूल में भूल (नई आवृत्ति)	।)
श्री मुक्तिमार्ग	॥=)
श्री अनुभवप्रकाश	॥)
श्री पंचमेरु आदि पूजासंग्रह	।।।)
समयसार प्रवचन भाग १	४ ॥)
समयसार प्रवचन भाग २	५ ।)
समयसार प्रवचन भाग ३	४ ॥)
समयसार प्रवचन भाग ४	४ ॥)
प्रवचनसार	५)
अष्टपाहुड़	३)
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१ ।=)
द्वितीय भाग	२)
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला प्र०	॥–)
द्वितीय भाग	॥–)
तृतीय भाग	॥–)
जैन बालपोथी	।)
छहढाला मूल	१५ नये पैसे
दसलक्षण व्रत विधानपूजा	०–७५
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	२ ॥)
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका सजिल्द	५)
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१.८५)
छहढाला (नई टीका)	८७ नये पैसे
जैन तीर्थ पूजा पाठ संग्रह सजिल्द	१ ।=)
अपूर्व अवसर प्रवचन और श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानु.	८५ नये पैसे
भेदविज्ञानसार	२)
अध्यात्मपाठसंग्रह	५)
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	=)
स्तोत्रत्रयी	॥)
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	=)
'आत्मधर्म मासिक' लवाजम–	३)
आत्मधर्म फाइल वर्ष १–३–५–६–७–८–१०–११–१२–१३ वर्ष	३ ।।।)
शासन प्रभाव	=)

[डाकव्यय अतिरिक्त]

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।